भारत का एक सुप्रसिद्ध हिन्दी
कृषि समाचार-पत्र (न्यूज़ पेपर)

खेती दुनिया

www.khetiduniyan.in

Excellence in Agri Info
KHETI DUNIYAN

KHETI DUNIYAN, PATIALA

All Subject to Patiala Jurisdiction.

BOOK POST – PRINTED MATTER

• Issue Dated 10-05-2025 • Vol.9 No.10 • H.O. : KD Complex, Gaushala Road, Patiala-147001 (Pb.) Ph. : 0175-2214575 • Page : 12 E-mail : khetiduniyan1983@gmail.com

JLS 6-2

जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय द्वारा विकसित

उड़द की दो एवं मसूर की नई किस्म

किसानों के लिये नई सौगात

जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर के कुलपति डॉ. प्रमोद कुमार मिश्रा की प्रेरणा से दलहनी फसलों के क्षेत्र में विश्वविद्यालय ने एक और महत्वपूर्ण उपलब्धि हासिल की है। विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने उड़द की दो नवीन उन्नत किस्मों टी.जे.यू.-339 एवं टी.जे.यू.-130 साथ ही मसूर की जे.एल.एस.-6-2 का सफलतापूर्वक विकास किया है। ये सभी किस्में कम अवधि में पकने वाली, बहुरोगरोधी तथा उच्च उत्पादकतायुक्त किस्में है। उड़द की टी.जे.यू.-339 किस्म की पकने की अवधि मात्र 62-65 दिन है, जबकि टी.जे.यू.-130 किस्म 60-62 दिन में तैयार हो जाती है। ये विशेष रूप से किसानों को अल्प समय में फसल तैयार करने का अवसर प्रदान करती है, जिससे वे एक ही खेत से अधिक फसलें उगा सकते है। उड़द की टी.जे.यू.-339 किस्म से 16 से 18 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तक उपज प्राप्त हो सकती है, जबकि टी.जे.यू.-130 किस्म 15 से 17 क्विंटल प्रति हैक्टेयर उपज देती है।

TJU-339

TJU-130

JLS 6-2

उड़द की खेती में पीला मोजेक रोग बहुत बड़ी समस्या मानी जाती है। जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय द्वारा विकसित उड़द की दोनों किस्में पीला मोजेक रोक के प्रति सहनशील है इससे किसानों को जहां एक ओर पीला मोजेक रोग को रोकने के लिये रासायनिक दवाओं पर निर्भरता कम होगी, वहीं दूसरी ओर उड़द की खेती की उत्पादन लागत भी कम की जा सकेगी, जिससे फसल की गुणवत्ता और उपज में आशा के अनुकूल सुधार होगें। वर्तमान में उड़द की खेती का क्षेत्र खरीफ मौसम से हटकर जायद मौसम की ओर तेजी से स्थानांतरित हो रहा है। इसका एक प्रमुख कारण है कि खरीफ में अच्छे किस्मों के बीज की कमी महसूस की जा रही थी। ज.ने.कृ.वि.वि. द्वारा विकसित ये सभी किस्में इस कमी को दूर करेंगी एवं उड़द की खेती को खरीफ मौसम में एक नई दिशा प्रदान करेंगी।

किसानों के बीच में मसूर के बड़े दाने की मांग को देखते हुये जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय द्वारा जे.एल.एस. -6-2 किस्म का विकास किया गया है, जो उकठा रोग के लिये सहनशील है एवं 20-25 क्विंटल उत्पादकता प्रदान करती है। यह किस्म प्रदेश के खरीफ की धान की फसल के बाद परती क्षेत्रों के लिए अति उपयुक्त है जो कि अक्सर सिंचाई या रबी की उपयुक्त किस्मों के अभाव में परती छूट जाती है। रबी के लिये वर्षा आधारित कृषि, समय या देरी से बुवाई करने के लिये भी यह किस्म अति उपयुक्त है। देर से बोनी करने पर भी इसकी औसत उपज लगभग 16 से 18 क्विंटल/हैक्टेयर प्राप्त की जा सकती है। मसूर की खेती में उगरा रोग बहुत बड़ी समस्या मानी जाती है, जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय की जे.एल.एस.-6.2 उगरा रोग के प्रति सहनशील किस्म है। साथ ही इसमें बहुरोगरोधी क्षमता है और यह मसूर के प्रमुख रोगों जैसे गेरूवा और एस्कोकाइटा ब्लाइट के लिये प्रतिरोधी है। इस पर मांहू का प्रभाव भी कम होता है। आशा है कि मसूर की यह नवीन प्रजाति कृषकों के बीच में अपनी अलग पहचान बनायेगी।

जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय के कुलपति आशान्वित है कि ये किस्में किसानों के लिये लाभकारी सिद्ध होंगी और मध्य प्रदेश सहित देश के अन्य उड़द एवं मसूर उत्पादन करने वाले क्षेत्रों में इसका व्यापक उपयोग होगा। विश्वविद्यालय का यह प्रयास न केवल किसानों की आय बढ़ाने में सहायक होगा, अपितु देश की खाद्य सुरक्षा एवं दलहन उत्पादन में आत्मनिर्भरता की दिशा में भी एक महत्वपूर्ण कदम है।

खेती दुनिया

द्वारा

किसान भाईयों व डीलर/डिस्ट्रीब्यूटरों के लिए

चंदों में विशेष छूट

एक वर्ष 500/- रुपए

दो वर्ष 800/- रुपए

पेमेंट करने के पश्चात् अपना डाक पता इस नंबर पर भेजें :

90410-14575

KHETI DUNIYAN
TID - 62763351

चंदे भेजने हेतु QR कोड सकैन करें।

खुम्ब की खेती के लाभ

जगदीप सिंह, प्रमोद एवं मनमोहन सिंह,
पादप रोग विभाग, हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

खुम्ब या मशरुम एक प्रकार का (कवक) फफूंद होता है। वर्षा ऋतु में प्रायः यह जंगलों में, खेतों में, चारागाहों में व खाद के ढेरों पर देखी जाती है। अपने आप प्राकृतिक रुप से उगने वाली खुम्ब पौष्टिक व खाने योग्य होती है तथा कुछ खुम्ब ज़हरीली भी हो सकती है। परन्तु वैज्ञानिक विधि से उगाई जाने वाली सभी खुम्ब खाने योग्य, स्वादिष्ट व पोष्टिक होती है।

भारत देश कृषि प्रधान देश है, यहां पर कृषि अवशेष व व्यर्थ जैसे गेहूं, चावल, सरसों, बाजरा, कपास आदि का अवशेष बहुत मात्रा में मिलता है। हमारे देश में जलवायु की विविधता के कारण विभिन्न प्रकार के खुम्ब आसानी से उगाए जा सकते हैं। खुम्ब की खेती कमरे व अस्थाई छप्पर या छत डालकर की जा सकती है और कम समय में अधिक से अधिक पैदावार ली जा सकती है। बढ़ती हुई जनसंख्या, कम होती खेती के योग्य भूमि को व महिलाओं के जीवन स्तर को ऊंचा उठाने तथा उन्हें कृषि जैसे व्यवसाय में व्यावहारिक रुप से सांझीदार बनाने के लिए खुम्ब उत्पादन एक महत्वपूर्ण व्यवसाय है। इसमें छोटे से छोटा किसान व ग्रामीण महिलाएं भी कम समय में ज्यादा मुनाफा कमा सकती है व अपना पारिवारिक जीवन अच्छे ढंग से व्यतीत कर सकती हैं और अपने परिवार को पौष्टिक आहार उपलब्ध करवा सकती है।

खुम्ब की खेती में अन्य फसलों की भांति अधिक भूमि की जरुरत नहीं होती। इसकी खेती छोटे भूमिहीन किसान, बेरोजगार युवक व महिलाओं के लिये आय का अच्छा साधन है। खुम्ब की खेती अस्थाई झोपड़ी, छप्पर या कमरों के अन्दर कृत्रिम व वैज्ञानिक विधि से सफलता पूर्वक की जा सकती है। हमारे संसार में लगभग एक दर्जन खुम्ब की प्रजातियों का उत्पादन व्यापारिक स्तर पर किया जाता है परन्तु हमारे भारतवर्ष में मुख्य रुप से चार प्रजातियां अधिक प्रचलित हैं, इनमें सफेद बटन (यूरोपियन मशरुम), (आयस्टर मशरुम) ढिंगरी, पैडी स्ट्रा (चाइनीज मशरुम), सफेद दूधिया खुम्ब। जिनकी खेती व्यापारिक स्तर पर की जाती है एवम व्यापारिक स्तर पर खेती के लिए सफेद बटन खुम्ब, आयस्टर या ढिंगरी के साथ-साथ दूधिया खुम्ब भी लोकप्रिय है।

खुम्ब उत्पादन के लाभ :

* खुम्ब प्रोटीन तथा पौष्टिक तत्वों से भरपूर भोजन प्रदान करती

है। अत: मशरुम दिल के रोग, मधुमेह, मोटापे, खून की कमी व कब्ज जैसे रोगियों के लिये आदर्श व सम्पूर्ण भोजन है।

* खुम्ब की खेती भूमिहीन एवं छोटे किसानों के लिए वरदान है, क्योंकि इसके उत्पादन के लिए बहुत ज्यादा जमीन की आवश्यकता नहीं पड़ती। इसे किसी भी स्थान पर छप्पर या छत डाल कर कच्चे कमरों में भी उगाया जा सकता है।

* खुम्ब की खेती कमरों के अन्दर भी की जा सकती है, जो कि प्राकृतिक आपदाओं जैसे कि ओलावृष्टि, पाला व सर्दी, आंधी व तूफान तथा आवारा पशुओं आदि से भी सुरक्षित हो जाती है।

* खुम्ब की खेती रोजगार के लिए अधिक अवसर प्रदान करती है।

* खुम्ब उत्पादन के बाद बची हुई खाद खेतों में दूसरी फसलों में भी प्रयोग की जा सकती है।

* खुम्ब व खुम्ब के उत्पादों का निर्यात करके विदेशी मुद्रा अर्जित की जा सकती है।

बेल की उन्नत खेती

बेल को श्रीफल, बेलपत्र, बंगाल क्विंस आदि नामों से भी जाना जाता है। बेल के फल में राइबोफ्लेविन, विटामिन 'ए' एवं कार्बोहाइड्रेट प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। बेल का औषधीय गुण मुख्य रूप से इसमें पाए जाने वाले माइमेलोसिन तत्व के कारण होता है। मारमेलोसिन पेट की बीमारियों के उपचार में उपयोग लिया जाता है। इसके गुदे से शर्बत, स्क्वेश एवं मारमेलेड बनाया जाता है। बेल की पत्तियों को हिन्दू धर्म में शिवजी को अर्पित किया जाता है।

शशि एवं डॉ. ओ.पी. गढ़वाल,
श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर, जयपुर (राजस्थान)

जलवायु एवं भूमि : बेल इतना सहिष्णु पौधा होता है कि हर प्रकार की जलवायु में भली-भांति उग जाता है। विशेषत: यह शुष्क जलवायु को अधिक पसंद करता है। इसमें पाले को सहन करने की भी क्षमता होती है। यह फल वृक्ष 7 सैंटीग्रेड तक तापमान को भी सहन कर लेता है। बेल हर प्रकार की भूमि में अच्छी तरह उगता है, लेकिन अच्छी खेती व पैदावार के लिए उपजाऊ दोमट मिट्टी अधिक उपयुक्त होती है। यह अम्लीय एवं क्षारीय (5-10 पी.एच. मान) भूमि पर भी सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। यह फल इतना अधिक सहिष्णु होता कि रेगिस्तान में 2-3 महीने मिट्टी में दब जाने के बाद भी पुनर्जीवित हो जाता है। भूमि में 9.0 डेसी. सायमन्स प्रति मीटर तक की लवणता को भी सहन कर लेता है।

उन्नत किस्में : विभिन्न संस्थानों में विकसित किस्म निम्न है :

1. नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, फैजाबाद : नरेन्द्र बेल-5 (एन.बी.-5), एन.बी.-9

2. केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ : सी.आई.एस.बी.-1, सी.आई.एस.एच.बी.-2

3. जी.बी. पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर : पंत उर्वशी, पंत सुजाता, पंत अपणी एवं पंत शिवानी

4. केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर : गोमा यशी, थार दिव्या व भार नीलकंड अन्य किस्मों में कागजी (फल का छिलका कागज जैसा पतला), मिर्जापुरी आदि हैं।

प्रवर्धन : बेल का प्रवर्धन साधारणतया बीज द्वारा ही किया जाता है। बेल का वानस्पतिक प्रवर्धन पैच कलिकायन द्वारा भी सरलता तथा सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

पौधे लगाने की विधि : बेल के पौधों का रोपण वर्षा से प्रारंभ करना चाहिए। गड्डों का आकार 75×75×75 सैंटीमीटर तथा एक गड्ढे से दूसरे गड्ढे की दूरी 6 मीटर रखनी चाहिए। वर्षा शुरू होते ही इन गड्ढों को दो भाग मिट्टी तथा एक भाग खाद से भर देना चाहिए। एक-दो वर्ष हो जाने पर गड्ढे की मिट्टी जब खूब बैठ जाए तो इनमें पौधों को लगा देना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक : साधारणतया यह पौधा बिना खाद और पानी के भी अच्छी तरह फलता-फूलता रहता है, लेकिन अच्छी फसल प्राप्त करने के लिए इसमें उचित खाद की मात्रा उचित समय पर देना आवश्यक है। एक फलदार पेड़ के लिए 500 ग्राम नत्रजन, 250 ग्राम फास्फोरस एवं 500 ग्राम पोटाश की मात्रा प्रति पेड़ देना चाहिए। चूंकि बेल में जस्ते की कमी के लक्षण पत्तियों पर नज़र आते हैं। अत: जस्ते की पूर्ति के लिए 0.5 प्रतिशत ज़िंक सल्फेट का छिड़काव जुलाई, अक्तूबर और दिसम्बर में करना लाभदायक रहता है।

सिंचाई एवं अन्य शस्यन : बेल का वातावरण के प्रति सहिष्णु होने के कारण किसी विशेष देखभाल की आवश्यकता नहीं होती है, फिर भी आरम्भ में जब पौधे छोटे-छोटे होते है, तो गर्मियों में उनकी महीने में दो बार सिंचाई कर देनी चाहिए। लेकिन जब पौधा फलत में आ जाता है, तो पूरी गर्मियों में 2-3 बार सिंचाई कर देना काफी होता है। आंवलों को हमेशा निराई-गुड़ाई कर, साफ-सुथरा रखना चाहिए।

संघाई व कटाई-छंटाई : बेलपत्र में संघाई का कार्य शुरू के 2-3 वर्षों में करते है, जिसमें यह ध्यान रखा जाता है। भूमि सतह के 2-3 फीट से कोई शाखा ना पनपे तथा बाद में इस मुख्य तने पर 4 शाखाओं का चुनाव करें। कांट-छांट में प्रति वर्ष सूखी, टेढ़ी-मेढ़ी, रोगी आदि शाखाओं को काट कर निकाल दें। यह कार्य तुड़ाई के साथ ही कर सकते है।

पौध संरक्षण : * बेल की कोमल शाखाओं तथा पत्तियों पर पर्ण सुरंगक का आक्रमण होता है, लेकिन इससे विशेष नुकसान नहीं पहुंचता है फिर भी 1 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में क्विनलफॉस 25 ई.सी. के छिड़काव से रोका जा सकता है।

* बेल के पेड़ पर रोगों का प्रकोप बहुत कम होता है। एकत्रित फलों के गुदे में कभी-कभी गलन की बीमारी लग जाती है, जिससे फल अंदर ही अंदर खराब हो जाता है। इसे कम करने के लिए फलों को सावधानीपूर्वक तोड़ा जाए, जिससे इन्हें चोट ना लगे तथा 0.3 प्रतिशत डाइथेन जेड-78 के घोल से फलों को तोड़ने के बाद उपचारित करके ठीक किया जा सकता है।

* कभी-कभी फल पकने से पूर्व फट जाते है, जो या तो सूक्ष्म तत्वों की कमी से या फिर अनियमित सिंचाई के कारण होता है। फल फटने से रोकने हेतु पोटाशियम सल्फेट 4 प्रतिशत का वर्ष में तीन बार पर्णीय छिड़काव अगस्त, नवम्बर व फरवरी माह में करें तथा फल विकास एवं परिपक्वता के समय नमी का अभाव नहीं होना चाहिए। फलों को श्रींक, पॉलीथीन से लपेट कर भी फटने की दर कम कर सकते है।

तुड़ाई एवं उपज : बीज पौधे 7-8 वर्ष बाद फलने लगते है, लेकिन चश्में से तैयार पौधों में फलत 4-5 वर्ष में शुरू हो जाती है। बेल का पेड़ लगभग 15 वर्ष बाद व्यवसायिक रूप से फलन में आता है। बेल का डंठल इतना मज़बूत होता है कि फल पकने के बाद भी पेड़ पर काफी दिन तक लगे रहते है। फल ठहराव से फल परिपक्वता में लगभग 10-11 महीने लगते है। कच्चे फलों में पीलापन आना शुरू हो जाए, उस समय उनको डंठल के साथ तोड़ लेना चाहिए। इस तरह के फल 10-12 दिन में अच्छी तरह पक कर तैयार हो जाते है। दस से पन्द्रह वर्ष पुराने पेड़ से 200-400 फल प्राप्त होते है। बेल के फलों का साधारण तापमान पर 2 सप्ताह रखा जा सकता है तथा शीत संग्रहण में 9 डिग्री सैल्सियस तापमान पर 3 माह तक सुरक्षित रख सकते है।

बदलते परिवेश में लाभदायक धान की सीधी बुवाई

मीनाक्षी सांगवान व मीना सिवाच, कृषि विज्ञान केन्द्र, रोहतक
कुलदीप सिंह व जोगेंदर तोमर, कृषि विज्ञान केन्द्र, सोनीपत
हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार–125004

धान भारत की एक प्रमुख फसल है। हमारे देश में लगभग 360 लाख हैक्टेयर क्षेत्र में धान की खेती की जाती है, जिसमें से लगभग 20 लाख हैक्टेयर क्षेत्र वर्षा आधारित है। असिंचित क्षेत्रों में समय पर वर्षाका पानी न मिलने से, किसान लोग समय से कद्दू नहीं कर पाते है, जिससे धान की रोपाई में विलम्ब हो जाती है। इसके साथ-साथ सिंचित नहरी क्षेत्रों में भी नहर का पानी समय पर नहीं आने से धान की रोपाई विलम्ब से होती है। इसके अलावा समय पर मज़दूर ना मिलने के कारण भी धान की रोपाई में देरी होती है और किसी प्रकार की महामारी फैलने के कारण मज़दूरों की कमी की समस्या का सामना करना पड़ सकता है। जैसे कि कोरोना महामारी के दौरान मज़दूरों की कमी की समस्या का सामना करना पड़ा था। इन सबके कारण पैदावार में कमी के साथ-साथ रबी फसल जैसे गेहूं की बुवाई में देरी हो जाती है, फलत: रबी फसल की उपज भी घट जाती है। इस समस्या का धान की सीधी बुवाई ही एक सही विकल्प है। सीधी बुवाई (DSR) का मतलब धान फसल को बिना कद्दू की हुई ज़मीन में सीधे बीजना है। इसको डायरैक्ट सीडीड राईस (DSR) या धान की सीधी बुवाई का नाम दिया जाता है। आज के परिवेश में चावल में संसाधन संरक्षण तकनीकी पर आधारित सीधी बुवाई (DSR) गंगा के मैदानी क्षेत्र जोकि पंजाब से लेकर कोलकत्ता तक फैला हुआ है, में वृहत पैमाने पर अपनाई जानी चाहिए, क्योंकि धान में सीधी बुवाई से कई महत्वपूर्ण फायदे क्षेत्र स्तर पर होते हैं, जैसे समय पर धान की बुवाई हो जाती है एवं लागत कम हो जाती है। परम्परागत तरीके से नर्सरी उगाने, कद्दू करना (पडलिंग) तथा रोपनी (ट्रांस्प्लान्टिंग) करने पर धान की खेती में लागत बढ़ जाती है। धान वाले क्षेत्रों में हमेशा कद्दू करने से वहां की मिट्टी की भौतिक दशा खराब हो जाती है, जिससे रबी फसलों की पैदावार में कमी आती है। फसलों में कम लागत लगाकर अधिक उत्पादन पाने के लिए किसानों को फसल-चक्र को समझना एवं समय पर रोपाई या बुवाई के साथ-साथ उत्तम बीज और उर्वरकों की संतुलित एवं नई तकनीकों का प्रयोग प्रति दिन लागत में वृद्धि, समय पर पानी एवं मज़दूरों की अनुपलब्धता एवं मृदा स्वास्थ्य में गिरावट की समस्या के समाधान हेतु धान की सीधी बुवाई ही रोपाई का एक सही विकल्प है। समय से धान की बुवाई से 6-10 प्रतिशत तक उत्पादन में वृद्धि होती है और 15-20 प्रतिशत उत्पादन लागत में बचत होती है। साथ ही इस तकनीक का प्रयोग करने से समय, श्रम संसाधन एवं लागत की बचत होती है। इन्हीं फायदों के कारण ही किसानों का ज्यादा से ज्यादा रुझान सीधी बुवाई की तरफ बढ़ रहा है, जोकि आने वाले समय में मज़दूरों की अनुपलब्धता के कारण और ज्यादा बढ़ेगा।

धान में सीधी बुवाई की जरूरत क्यों है?

परम्परागत तरीके से धान की खेती करने के लिए समय पर नर्सरी तैयार करना, खेत में पानी की उचित व्यवस्था करके कद्दू करना एवं अंत में मज़दूरों से रोपाई करने की आवश्यकता होती है। इससे धान की खेती की कुल लागत में बढ़ोत्तरी हो जाती है। समय पर वर्षा का पानी न मिलने से कद्दू और रोपाई करने में देरी हो जाती है। वर्षा आधारित एवं नहर आश्रित धान-क्षेत्रों में यह एक प्रमुख समस्या है। लगातार कद्दू करने से मिट्टी की भौतिक दशा भी प्रभावित होती है, जोकि रबी फसलों के लिए योग्य नहीं रह पाती एवं उनकी उत्पादकता में कमी हो जाती है। सीधी बुवाई तकनीक अपनाकर उपरोक्त समस्याओं को कम किया जा सकता है एवं उच्च उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

बासमती धान की सीधी बुवाई हेतु सस्य तकनीकियां

बासमती धान की काश्त सुप्रबंधित क्रियाओं को अपनाकर बगैर-कद्दू अवस्था में सीधी बुवाई द्वारा सफलतापूर्वक की जा सकती है। इससे भूमि एवं जल संसाधन संरक्षण के साथ-साथ मज़दूरों व ऊर्जा की बचत होगी। धान की सीधी बुवाई की तकनीक निम्नलिखित है :

भूमि का प्रकार : धान की काश्त हेतु उपयुक्त लगभग सभी प्रकार की भूमि में बासमती धान की सीधी बुवाई की जा सकती है; हालांकि मध्यम संरचना वाली भूमि ज्यादा उपयुक्त है लेकिन रेतीली या हल्की मिट्टी इसके लिए उपयुक्त नहीं।

लेजर समतलीकरण : अच्छे जमाव एवं पानी की बचत हेतु खेत का लेजर समतलीकरण करना चाहिए। इसे एक तरह से अति आवश्यक समझा जाए।

क्रमशः

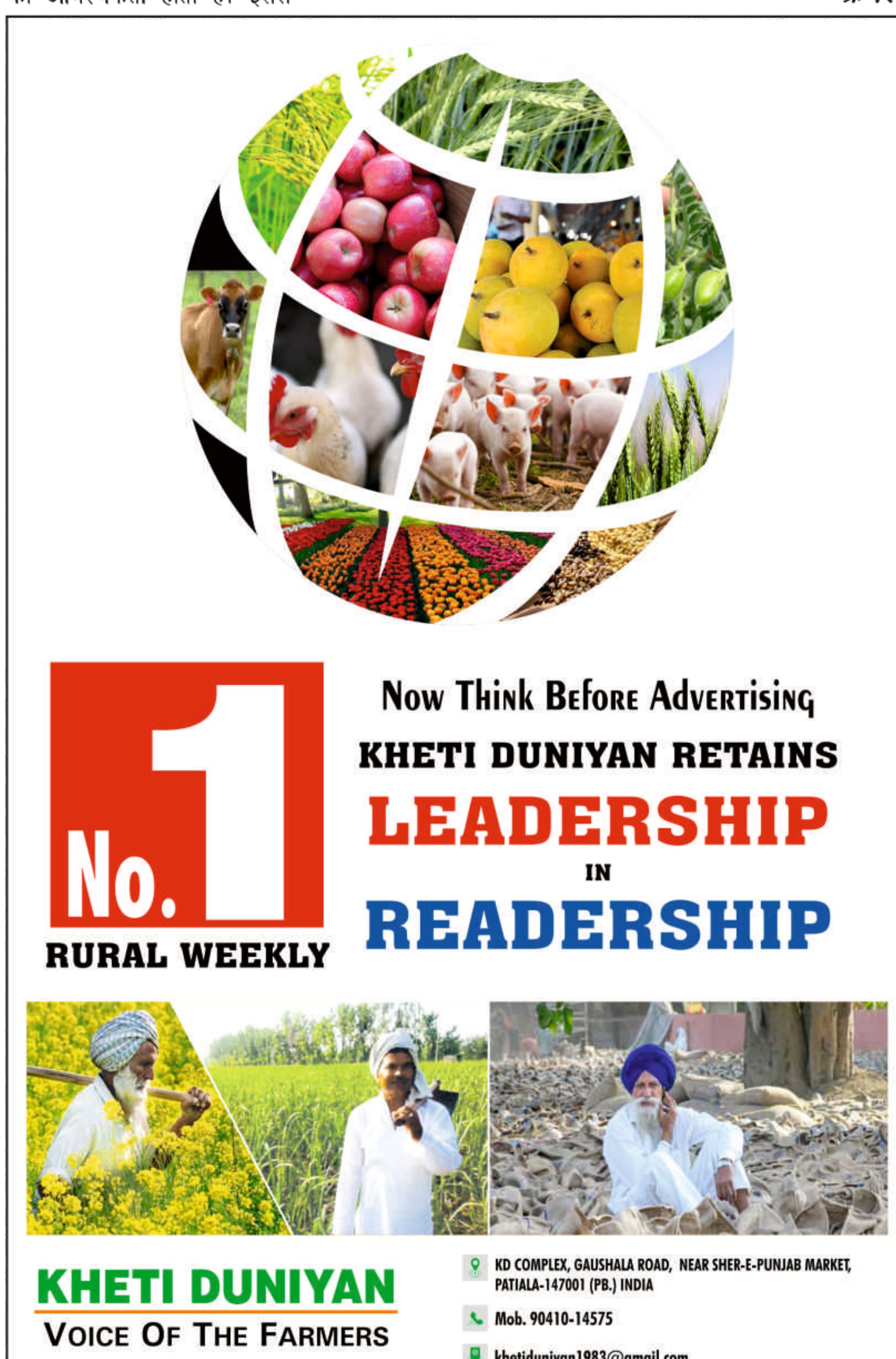

खेती दुनिया

KHETI DUNIYAN

मुख्य कार्यालय

के.डी. कॉम्पलैक्स, गऊशाला रोड, नजदीक शेरे पंजाब मार्केट, पटियाला - 147001 (पंजाब)

फोन : 0175-2214575

मो. 90410-14575

E-mail : khetiduniyan1983@gmail.com

वर्ष : 09 अंक : 10

तिथि : 10-05-2025

सम्पादक

जगप्रीत सिंह

मुख्य शाखाएं

पटियाला

फोन : 0175-2214575

मो. 90410-14575

मुम्बई

दिल्ली

लुधियाना

बण्ठिडा

सम्पादकीय बोर्ड

डॉ. डी.डी. नारंग

डॉ. जे.एस. डाल

डॉ. आर.एम. फुलझेले

कम्पोजिंग

एक्ता कम्प्यूटरज़ पटियाला

Editor, Printer & Publisher **JAGPREET SINGH**
Printed at **Drishti Printers,** Dasmesh Market,
Near Sher-e-Punjab Market,Gaushala Road, PATIALA &
Published at Patiala for **Prop. JAGPREET SINGH**

खाद्य पदार्थों में मिलावट का खतरा – इससे कैसे निपटें

ऋतुपर्णा पाटगिरी

हाल के दिनों में, पनीर, तरबूज, मसाले आदि जैसे दैनिक उपभोग की कई अन्य वस्तुओं में खाद्य मिलावट की चिंताजनक रिपोर्टें आई हैं। दिल्ली, मुंबई और नोएडा जैसे देश के विभिन्न हिस्सों से समाचार रिपोर्टों से पता चला है कि बाज़ार 'नकली पनीर' से भरा पड़ा है। सबसे आम मिलावट में स्टार्च, डिटर्जेंट, सिंथैटिक दूध, एसिटिक एसिड आदि शामिल हैं। मिलावटी खाद्य पदार्थ खाने से गंभीर स्वास्थ्य परिणाम हो सकते हैं, जैसे कि खाद्य विषाक्तता, कभी-कभी मृत्यु भी।

भोजन हमारे सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन का सबसे महत्वपूर्ण पहलू है और पोषण व स्वास्थ्य संबंधी नीतियों को निर्धारित करने में राज्य और समाज दोनों ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। स्कूलों में मिड-डे-मील से लेकर सरकार प्रायोजित समारोहों तक, भोजन से जुड़े फैसले अक्सर पोषण संबंधी आवश्यकताओं की बजाय सामाजिक और राजनीतिक निर्माणों द्वारा संचालित होते है। ज्यादातर मामलों में, स्वास्थ्य का सवाल अक्सर पीछे छूट जाता है।

हाल ही में हुए राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (एन.एफ.एच.एच. -57ए2019- 21) के अनुसार 5 साल से कम उम्र के बच्चों में बौनेपन की दर 35.5 प्रतिशत, कमज़ोरी की दर 19.3 प्रतिशत और कम वज़न की व्यापकता 32.1 प्रतिशत है। ऐसे सबूतों के बावजूद, पोषण और सार्वजनिक स्वास्थ्य की उपेक्षा की जाती है। भोजन की गुणवत्ता के बारे में इसी तरह की उदासीनता यह बता सकती है कि खाद्य पदार्थों में मिलावट को लेकर कोई आक्रोश क्यों नहीं है, जो सार्वजनिक स्वास्थ्य के लिए एक गंभीर चिंता का विषय होना चाहिए।

1990 के दशक में, मिलावटी दूध के बारे में कहानियां सुनना आम बात थी। 2025 में, दूध सहित खाद्य पदार्थों में मिला कर एक समस्या बनी हुई है। उदाहरण के लिए 2011 में दूध में मिलावट पर राष्ट्रीय सर्वेक्षण से पता चला कि भारत में जांचे गए दूध के 70 प्रतिशत नमूने खाद्य सुरक्षा के मानकों पर खरे नहीं उतरे। दूध में पानी मुख्य मिलावट है। अन्य मिलावटों में नमक, डिटर्जेंट और ग्लूकोज शामिल हैं।

हाल के दिनों में, पनीर, तरबूज, मसाले आदि जैसे दैनिक उपभोग की कई अन्य वस्तुओं में खाद्य मिलावट की चिंताजनक रिपोर्टें आई है। दिल्ली, मुंबई और नोएडा जैसे देश के विभिन्न हिस्सों से समाचार रिपोर्टों से पता चला है कि बाज़ार 'नकली पनीर' से भरा पड़ा है। सबसे आम मिलावट में स्टार्च, डिटर्जेंट, सिंथैटिक दूध, एसिटिक एसिड आदि शामिल है। मिलावटी खाद्य पदार्थ खाने से गंभीर स्वास्थ्य परिणाम हो सकते है, जैसे कि खाद्य विषाक्तता, कभी-कभी मृत्यु भी।

मिलावटी खाद्य पदार्थों का प्रचलन ऐसे देश में खतरे की घंटी बजा सकता है, जो संक्रामक और गैर-संक्रामक दोनों तरह की स्वास्थ्य समस्याओं से जुड़ा रहा है। भारत को अक्सर दुनिया की मधुमेह राजधानी के रूप में माना जाता है, जहां 18 वर्ष से अधिक आयु के लगभग 77 मिलियन लोग इस गैर-संक्रामक बीमारी से पीड़ित है। भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद और मद्रास मधुमेह अनुसंधान फाउंडेशन, चेन्नई द्वारा हाल ही में किए गए एक अध्ययन में इसका कारण भारतीयों द्वारा खाए जाने वाले भोजन को बताया गया है।

मधुमेह रोगियों की अधिक संख्या तले हुए और अत्याधिक प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों से जुड़ी हुई है। कम गुणवत्ता वाले तेल का उपयोग भी एक योगदान कारक है। देश में सबसे ज्यादा मिलावटी खाद्य पदार्थों में खाद्य तेल भी शामिल है। सरसों के तेल में चावल की भूसी का तेल, आर्गेमोन तेल और कृत्रिम एलिल आइसोथियोसाइनेट जैसे मिलावट किए जाते है।

मसालों में मिलावट का मामला और भी चौकाने वाला है। अप्रैल 2024 में, हांगकांग ने कैंसर पैदा करने वाले कीटनाशक एथिलीन ऑक्साइड की बड़ी मात्रा की मौजूदगी के कारण कुछ मसाला मिश्रणों की बिक्री को निलंबित कर दिया। भारत में बने मसाले, जिन्हें प्रमुख निर्यातों में से एक माना जाता है, दुनिया भर में व्यापक रूप से बेचे जाते है।

स्वास्थ्य प्रभावों के अलावा, जब ये मामले सामने आते हैं, तो देश की अंतर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा को भी नुकसान पहुंचता है। यूरोपीय संघ ने पहले ही भारत से आने वाली मिर्च और काली मिर्च में एथिलीन ऑक्साइड की मौजूदगी को लेकर चिंता जताई है। इसने 2019 और 2024 के बीच भारी संदूषण के लिए 400 वस्तुओं पर प्रतिबंध भी लगाया है।

भारतीय खाद्य सुरक्षा और मानक प्राधिकरण छापे मार रहा है और नमुना परीक्षण कर रहा है और कई निर्माताओं के विनिर्माण लाइसैंस रद्द कर रहा है। लोगों को मिलावटी उत्पादों को खरीदने से सावधान रहने, ध्यान से जांच करने और घर पर पनीर जैसी चीजें खाने के लिए भी निर्देशित किया गया है। लेकिन ऐसे उपाय पर्याप्त नहीं है।

यह कह कर कि नागरिकों को जागरूक होना चाहिए और घर पर खाना खाना चाहिए, भोजन को सुरक्षित और स्वस्थ बनाने की जिम्मेदारी राज्य से व्यक्ति पर स्थानांतरित कर दी जाती है। यह ऐसे देश में हासिल करना विशेष रूप से कठिन है, जहां अभी भी गरीब और अशिक्षित लोगों की बड़ी आबादी है। समस्या बेहतर खेती, प्रसंस्करण और पैकेजिंग प्रथाओं की मांग करती है। हर स्तर पर उत्पादकों को सुरक्षित खाद्य प्रथाओं के बारे में बेहतर प्रशिक्षण और ज्ञान की आवश्यकता है।

पूरे भारत में सख्त क्रियान्वयन सुनिश्चित करना चाहिए, क्योंकि कई राज्यों में ऐसा करने के लिए बुनियादी ढांचा नहीं है। भोजन में कीटनाशकों के अनुमेय स्तरों को देखने और भोजन की गुणवत्ता और स्वास्थ्य के साथ इसके संबंध पर पुनर्विचार करने की भी आवश्यकता है। हमें पोषण और स्वास्थ्य संबंधी खतरों से लड़ने के लिए खाद्य साक्षरता की अवधारणा विकसित करनी चाहिए।

आर.एस. चौहान,
राजेश लाठर, वन्दना
एवं अश्वनी कुमार,
कृषि विज्ञान केन्द्र, पंचकूला,
चौ. चरण सिंह हरियाणा
कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

धान की नर्सरी में रोग एवं पोषक तत्व प्रबंधन

"जब भी रोग व कीट प्रबंधन की बात करते हैं, तो सबसे पहला कदम बीज उपचार से शुरू होता है तथा अच्छे उत्पादन के लिए यह कार्य नर्सरी से ही आरंभ करना चाहिए। कई बार किसान फसल में पोषक तत्वों की कमी के लक्षणों को रोग के लक्षण समझ बैठते हैं और जानकारी के अभाव में अनावश्यक रसायनों का छिड़काव करते हैं, जिससे ना तो उन लक्षणों का समाधान होता है, अपितु फसल लागत में भी बढ़ोत्तरी होती है।"

भारत में धान खरीफ की एक महत्वपूर्ण फसल है। उत्पादकता की दृष्टि से विश्व में मिश्र, अमेरिका व चीन सिरमौर देश है, जिनकी धान की औसत पैदावार 63.3 से 88.8 क्विंटल प्रति हैक्टेयर है, जबकि भारत में धान की औसत उपज 30 क्विंटल प्रति हैक्टेयर पर लगभग स्थिर है। वहीं हरियाणा

की बात करें, तो हरियाणा में धान की औसत पैदावार लगभग 36-42 क्विंटल प्रति हैक्टेयर के बीच है। पैदावार में इस अंतर के विभिन्न कारणों जैसे जलवायु निर्भरता, भूमि की उत्पादन क्षमता में कमी (जैविक कार्बन का 1 प्रतिशत से 0.2 प्रतिशत तक कमी होना), उचित व संतुलित खाद व सिंचाई की कमी आदि के साथ-साथ फसल में बीमारियों, कीटों का प्रकोप व पोषक तत्वों का उचित प्रबंधन ना होना, इस कम उत्पादन के मुख्य कारण हैं। प्रायः यह देखने में आया है कि नई व रोग अवरोधी किस्मों को लगातार बोने से भी इन किस्मों में रोगों के प्रति अवरोधकता में कमी आ जाती है।

जब भी रोग व कीट प्रबंधन की बात करते हैं, तो सबसे पहला कदम बीज उपचार से शुरू होता है तथा अच्छे उत्पादन के लिए यह कार्य नर्सरी से ही आरंभ करना चाहिए। कई बार किसान फसल में पोषक तत्वों की कमी के लक्षणों को रोग के लक्षण समझ बैठते हैं और जानकारी के अभाव में अनावश्यक रसायनों का छिड़काव करते हैं, जिससे ना तो उन लक्षणों का समाधान होता है, अपितु फसल लागत में भी बढ़ोत्तरी होती है।

बीज उपचार का महत्व : फसलों में लगने वाली अधिकांश बीमारियां या तो संक्रमित बीज द्वारा फैलती है या ज़मीन में पड़े कीटाणुओं/जीवाणुओं से यानि भूमि जनित होती है और कुछ बीमारियां तो ऐसी जिनकी रोकथाम केवल और केवल बीज उपचार से ही संभव है। यदि किसान किसी कारणवश बीज उपचार नहीं कर पाते और खड़ी फसल में बीमारी लग जाती है, तो उसकी रोकथाम करना मुश्किल हो जाता है। साथ ही इस महंगाई के युग में, थोड़े खर्च में रोगों की रोकथाम के लिए व रसायनों के अंधाधुंध प्रयोग से भूमि की संरचना को बचाने के लिए रासायनिक बीज उपचार सही, आसान व प्रभावशाली साधन है। इसी प्रकार पोषक तत्वों के प्रारंभिक लक्षणों का समाधान करना भी उतना ही आवश्यक है। किसानों को धान के हर किस्म के बीज (बासमती / संकर) को उपचारित करके ही बोना चाहिए, जिस पर मात्र 40-50 रुपए प्रति एकड़ का ही खर्च आता है।

पौधशाला में संतुलित खादों का प्रयोग : प्रायः यह देखने में आया है कि किसान पौधशाला में खाद नहीं डालते या कम डालते है। अच्छी नर्सरी के लिए सिफारिश की गई खाद जैसे गोबर की खाद 6-8 टन, नाइट्रोजन 10 किलोग्राम, फास्फोरस 10 किलोग्राम व जिंक सल्फेट 10 किलोग्राम प्रति एकड़ पौध क्षेत्र की दर से डालें तथा बुवाई के दो सप्ताह बाद 10 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति एकड़ डालें।

बीज की मात्रा :

(अ) असुगंधित बौनी किस्में : 10-12 किलोग्राम

(ब) संकर धान : 6-8 किलोग्राम

बुवाई का समय :

(अ) कम अवधि वाली बौनी किस्में : 15 मई से 30 जून

(ब) मध्यम, मध्यम कम अवधि वाली बौनी किस्में व संकर धान : 15 मई से 30 मई

रोपाई का समय :

(अ) कम अवधि वाली बौनी किस्में : 15 जून से 30 जुलाई

(ब) मध्यम, मध्यम कम अवधि वाली बौनी किस्में व संकर धान : 15 जून से 7 जुलाई

रोपाई का फासला : 15 × 15 सैंटीमीटर

बीज उपचार : एक एकड़ के बीज के लिए 1 किलोग्राम नमक को 10 लीटर पानी में घोलें तथा इस घोल में 2-3 किलोग्राम बीज को बारी-बारी डालें तथा

ऊपर तैरते हल्के बीज को बाहर निकाल दें। नीचे बैठे हुए बीज को 2-3 बार साफ पानी से धोएं ताकि नमक के अंश ना रहें। इसके बाद 10 लीटर पानी में 10 ग्राम एमिसान या कार्बेन्डाज़िम व 1 ग्राम स्ट्रैप्टोसाइक्लिन डाल कर घोल बना लें तथा इस घोल में 10-12 किलोग्राम बीज को डाल कर 24 घंटे तक भिगोएं। तद्पश्चात् बीज को बाहर निकाल कर छाया में पक्के फर्श या बोरी पर डाल कर ढेर बना दें तथा गीली बोरी से ढक दें तथा उस पर पानी का छिड़काव करते रहें ताकि बीज सूखे नहीं व लगभग 24 घंटे बाद बीज का अंकुरण शुरू हो जाएगा। इस अंकुरित बीज को 40-50 ग्राम प्रति वर्ग मीटर क्षेत्र की दर से बुवाई करें। कम स्थान में अधिक बीज की बुवाई ना करें।

पौध उखाड़ना : किसान इस बात का विशेष ध्यान रखें कि पौध को हमेशा खड़े पानी में ही उखाड़ें, क्योंकि सूखे में पौध उखाड़ने से जड़ों में नुकसान होता है, जिससे बीमारियों के फैलने के अधिक आसार रहते हैं।

बीमारियों की रोकथाम : धान की फसल में लगभग 17 प्रकार की बीमारियां लगती हैं, जिनमें से केवल सात बीमारियां ही आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। बीमारियों के प्रकोप से धान की फसल में 70-80 प्रतिशत तक का नुकसान रिकॉर्ड किया गया है। धान की नर्सरी में लगने वाली मुख्य बीमारियों के लक्षण व रोकथाम निम्न प्रकार से हैं :

1. पद गलन व बकानी : इस बीमारी का प्रकोप हरियाणा में सबसे पहले सन् 1989 में पी.आर.-109 किस्म में देखा गया। यद्यपि यह रोग बासमती व बौनी दोनों तरह की किस्मों में पाया जाता है, लेकिन यह रोग बासमती किस्मों में अधिक नुकसान करता है। वर्ष 1992 में इस रोग ने हरियाणा में घातक रूप धारण किया, जिससे किसानों को दोबारा धान की रोपाई करने पर विवश होना पड़ा था। इस रोग के लक्षण पनीरी व फसल दोनों में पाए जाते हैं। इसके प्रमुख लक्षणों में बकानी के लक्षण आते हैं, जिससे प्रभावित पौधे पतले, पीले व स्वरूप पौधों की तुलना में लम्बे होकर सूख जाते हैं। अधिक रोगी पौधे रोपाई से पहले ही सूख जाते हैं। इस रोग की मुख्य पहचान पानी की सतह से ऊपर की गांठों से जड़ों का निकलना व रूई जैसी सफेद या गुलाबी रंग की फफूंद का दिखाई देना है।

रोकथाम :

1. बीज उपचार करें।
2. पनीरी खड़े पानी में उखाड़ें।
3. पनीरी उखाड़ने से एक सप्ताह पहले कार्बेन्डाज़िम एक ग्राम प्रति वर्गमीटर की दर से रेत में मिला कर एकसार बिखेरें।
4. रोग ग्रसित पौधों की रोपाई ना करें।
5. पनीरी उखाड़ने से पहले थोड़ा यूरिया पौधशाला में बिखेर दें। इससे ज़मीन नर्म पड़ जाती है और पनीरी आसानी से उखड़ जाती है।

2. बदरा या ब्लास्ट : यह बासमती धान का प्रमुख रोग है। पत्तियों पर आंख के आकार के बैंगनी लाल रंग के छोटे-छोटे धब्बे बनते है, जिसके बीच का भाग हल्के भूरे या राख जैसे रंग का होता है। तने पर गांठें काले रंग की हो जाती है तथा पौधा गांठ से टूट कर गिर जाता है। रोग की सबसे भयंकर अवस्था ग्रीवा (नैक) गलन है, जिसमें बालियों के डंठल पर काले धब्बे पड़ जाते हैं और ग्रीवा गल जाती है। प्रभावित बालियों में दाने नहीं पड़ते तथा बालियां सफेद व सीधी खड़ी रहती है।

शेष पृष्ठ 8 पर

क्यों आवश्यक है मिट्टी परीक्षण

बृजेन्द्र प्रताप सिंह परिहार, डॉ. आर.के.एस. तोमर, बी.एस. कसाना, कृषि विज्ञान केन्द्र, दतिया (म.प्र.)

कृषि उत्पादन में मृदा एक प्रमुख प्राकृतिक स्त्रोत है। उर्वर एवं जीवंत मृदा के बगैर कृषि की कल्पना करना भी संभव नहीं है। अत: कृषि उत्पादकता को टिकाऊ रखने हेतु इस अमूल्य प्राकृतिक स्त्रोत के बारे में सही जानकारी एकत्र कर उसके गुणों को संरक्षित कर ही कृषि उत्पादकता को टिकाऊ रखते हुए उत्तरोत्तर वृद्धि करना संभव है।

कृषि उत्पादन में मृदा एक प्रमुख प्राकृतिक स्त्रोत है। उर्वर एवं जीवंत मृदा के बगैर कृषि की कल्पना करना भी संभव नहीं है। अत: कृषि उत्पादकता को टिकाऊ रखने हेतु इस अमूल्य प्राकृतिक स्त्रोत के बारे में सही जानकारी एकत्र कर उसके गुणों को संरक्षित कर ही कृषि उत्पादकता को टिकाऊ रखते हुए उत्तरोत्तर वृद्धि करना संभव है।

* मिट्टी की पोषक तत्व प्रदाय क्षमता ज्ञात करने एवं जमीन में मिलाए गए उर्वरकों की प्रतिक्रिया ज्ञात करना।

* परीक्षण के आधार पर फसल की आवश्यकतानुसार उर्वरकों की उपयुक्त तथा लाभकारी मात्रा निर्धारित करना।

* पर्याप्त पोषक तत्व उपलब्धता वाली भूमियों में उर्वरक के अतिरिक्त प्रयोग की बचत करना।

* फसलों की अधिकतम उपज करने के लिए उनकी आवश्यकतानुसार उर्वरक तथा सुधारक प्रयोग करना।

* उर्वरकों की उपयोग क्षमता में वृद्धि करना।

नमूना:- मृदा परीक्षण से बेहतर परिणाम प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि मृदा नमूने का एकत्रीकरण सही विधि से किया जाए। मृदा का प्रतिनिधि नमूना लेते समय यदि सही विधि का प्रयोग न किया जाए तो मृदा नमूनों के परीक्षण से प्राप्त परिणाम चयनित प्रक्षेत्र को सही-सही जानकारी नहीं देते। परिणामस्वरूप मृदा के गुणों की सही जानकारी उपलब्ध नहीं हो पाती। अत: मृदा नमूने एकत्रित करते समय निम्न चरणों का ध्यान रखना चाहिए:-

प्रतिनिधि मृदा नमूना एकत्रित करने की विधि:-

चरण 1 : * नमूना ऐसी जगह से लिया जाए तो उन मिट्टियों का वास्तविक प्रतिनिधत्व कर सकें। खेत को उसकी स्थिति (समतल, ऊंची-नीची, ढलान) एवं मिट्टी की किस्म के अनुसार बांट लेते हैं।

* नमूना लेने के लिए लगभग एक हैक्टेयर क्षेत्र से 15-20 स्थानों का यादृच्छिक (रेन्डम) चयन करते हैं।

चरण 2:

नमूना लेने वाले स्थान से घास, फूल इत्यादि साफ कर लेते है। खुरपी या फावड़े की सहायता से लगभग 15 सै.मी. गहरा अंग्रेजी (वी) आकार का गड्ढा खोदकर किसी भी तरफ से पूरी गहराई तक की मिट्टी की एक समान परत काटकर साफ बाल्टी में एकत्र कर लेते हैं।

चरण 3:

एकत्रित नमूनों को आपस में अच्छी प्रकार से मिला लें एवं छाया में सुखा लें। सुखाने के बाद नमूनों के ढेलों को फाड़कर बारीक बनाकर खरपतवार, पौधों की जड़ें, कंकड़-पत्थर आदि को निकालकर फेंक दें।

चरण 4:

* बची हुई मिट्टी को गोल या चौकोर रूप देकर चार भागों में विभाजित करके दो विपरीत दिशा के भाग निकालकर अलग करने का कार्य तब तक करते हैं, जब तक कि 500 ग्राम मिट्टी शेष न रह जाए।

* मिट्टी को किसी साफ पॉलिथीन या कपड़े की थैली में भरकर उसमें पहचान के लिए सूचना पत्रक को अंदर डालकर प्रयोगशाला में भेज देनी चाहिए।

प्रक्षेत्र से मृदा नमूनों को एकत्रित करते समय निम्न सावधानियां रखना चाहिए

* खाद के गड्ढे, मेंढ़ तथा वृक्षों के नीचे से नमूने नहीं लेने चाहिए।

* अधिक पोषक तत्व शोषित करने वाली फसलों वाले क्षेत्र के नमूने एवं जहां केवल अनाज की फसल ली गई हो तथा डंठल इत्यादि खेत में ही छोड़ दिए गए हों कि नमूने अलग-अलग लेने चाहिए।

* ऐसे क्षेत्र जहां अधिकतर समय पानी भरा रहता हों, वहां से नमूने एकत्र न करें।

* मृदा अपरदन के कारण जिस क्षेत्र की ऊपरी सतह कटकर बह गई हो तो उसके नमूने अलग से लेने चाहिए।

* यदि नमूना लेने वाला क्षेत्र बड़ा है, तो नमूनों की संख्या उसी के अनुरूप बढ़ा देनी चाहिए।

* एकत्रित मृदा नमूनों को न तो उर्वरकों के बोरे के पास रखना चाहिए और न ही उन पर सुखाना चाहिए।

* नमूने लेते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि किस क्षेत्र में उर्वरक का प्रयोग किया गया है तथा किस में नहीं।

* नमूने का सही रिकॉर्ड रखना चाहिए।

नमूना कब लें?:- यदि सघन कृषि की जा रही हो तो नमूने एक फसल चक्र के पूरा होने पर प्रति वर्ष लेने चाहिए। अन्यथा तीन वर्ष में एक बार मिट्टी परीक्षण करवाना पर्याप्त रहता है।

नमूनों को प्रयोगशाला में कैसे भेजें?:- मिट्टी के नमूने के साथ भेजे जाने वाले सूचना पत्र की दो प्रतियां तैयार करके एक प्रति थैले के अन्दर रख कर तथा दूसरी थैली का मुंह बांधने के साथ बांध देनी चाहिए। सूचना पत्र पर निम्नलिखित जानकारी देनी चाहिए:-

* किसान का नाम व पता

* नमूना एकत्र करने की दिनांक

* खेत का नंबर या नाम

* पिछली बोई गई फसल एवं प्रस्तावित फसल का नाम

एकत्रित नमूनों की जांच के लिए स्वयं, डाक पार्सल द्वारा या किसी कृषि प्रसार कार्यकर्ता के माध्यम से निकट की मिट्टी परीक्षण प्रयोगशाला में भेज देना चाहिए।

मिट्टी परीक्षण में जांच किए जाने वाले आवश्यक बिन्दु:-

मृदा पी.एच. मान:- इसके द्वारा मिट्टी की अभिक्रिया का पता चलता है कि मिट्टी सामान्य, अम्लीय या क्षारीय प्रकृति की है। मिट्टी से प्राप्त पोषक तत्वों का पौधों द्वारा ग्रहण करना बहुत सीमा तक मृदा पी.एच. पर निर्भर करता है। सामान्य मृदा का पी.एच. मान 6.5 से 7.5 के बीच होता है। 6.5 से कम होने पर भूमि अम्लीय तथा 7.5 से अधिक होने पर भूमि क्षारीय होती है। अम्लीय भूमि के लिए चूने व क्षारीय भूमि के लिए जिप्सम की आवश्यक मात्रा ज्ञात करने के लिए मिट्टी की जांच की जाती है, ताकि उसको सुधारा जा सके। समस्याप्रद मिट्टियों में फसलों की उपयुक्त प्रजातियों की संस्तुति की जाती है, जो कि अम्लीयता अथवा क्षारीयता को सहन करने की क्षमता रखती हो। मृदा का पी.एच. सामान्य बना रहना चाहिए।

कार्बन एवं उपलब्ध नाइट्रोजन :- नाइट्रोजन युक्त उर्वरकों की संस्तुति के लिए जैविक कार्बन को आधार माना जाता है, क्योंकि मिट्टी में जैविक कार्बन एवं सुलभ नाइट्रोजन एक निश्चित मात्रा में पाए जाते हैं। जैविक कार्बन की मात्रा ज्ञात होने पर भूमि में उपलब्ध नाइट्रोजन की मात्रा ज्ञात की जा सकती है।

उपलब्ध फॉस्फोरस एवं पोटाश :- मृदा परीक्षण के आधार पर इन तत्वों की सिफारिश कि. ग्रा. प्रति हैक्टेयर या कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर के हिसाब से की जाती है।

विद्युत चालकता :- मृदा परीक्षण के आधार पर हमें मृदा में पाई जाने वाली विद्युत चालकता की कमी तथा अधिकता का पता लग सकता है।

रासायनिक उर्वरकों तथा कार्बनिक खादों का समन्वित प्रयोग:

रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग अकेले क्यों नहीं?

* यद्यपि रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग मृदा उर्वरता में हुई कमी को पूरा करने के लिए किया जाता है। लेकिन रासायनिक उर्वरक काफी महंगे होने के कारण गरीब किसान लाभदायक उत्पादन प्राप्त करने के लिए अधिक मात्रा में प्रयोग नहीं कर सकते हैं।

* रासायनिक उर्वरकों का अकेले अत्यधिक प्रयोग मृदा स्वास्थ्य पर बहुधा खराब प्रभाव छोड़ता है तथा साथ ही साथ पर्यावरण को भी प्रदूषित करता है।

* रासायनिक उर्वरकों के लगातार प्रयोग से मृदा में पोषक तत्वों का असंतुलन विशेषकर सूक्ष्म तथा द्वितीयक पोषक तत्वों का असंतुलन बढ़ाता है।

कार्बनिक खादों का प्रयोग अकेले क्यों नहीं?

* सघन कृषि की आवश्यकतानुसार अकेले कार्बनिक खादें उपयुक्त मात्रा में पोषक तत्व प्रदाय नहीं कर सकती है, क्योंकि उनकी उपलब्धता सीमित है। कार्बनिक खादों में पोषक तत्व भी काफी कम होते हैं और एक टन गोबर की खाद से लगभग 12 कि.ग्रा. पोषक तत्व प्राप्त होते हैं। कार्बनिक खादों में पोषक तत्व कम होते हैं। पोषक तत्वों के धीमे निष्कासन से उनकी सुलभता भी कम होती है। रासायनिक उर्वरकों एवं कार्बनिक खादों के समन्वित प्रयोग से उपयुक्त समस्याओं से कुछ हद तक छुटकारा पाने के साथ-साथ निम्नलिखित लाभ हैं:-

* संतुलित पौध पोषण।

* भौतिक, रासायनिक तथा जैविक प्रक्रियाओं को नियंत्रित करके मृदा स्वास्थ्य को अच्छा बनाना।

* फसलोत्पादन में कम लागत।

* पर्यावरण प्रदूषण से रहित उत्पादन यंत्र।

* लम्बी अवधि के लिए स्थिर उत्पादकता।

* काली मिट्टी में जल का अन्त: स्त्राव तथा अन्त: स्यंदन बढ़ता है एवं लाल मिट्टी की पानी को धारण करने की क्षमता बढ़ती है। यह पानी उस फसल व अगली फसल के लिए काफी उपयोगी होता है।

* जलोढ़ तथा लाल मिट्टी में ऊपरी सतह पर पपड़ी कम जमती है।

रासायनिक उर्वरकों तथा कार्बनिक खादों का समन्वित प्रयोग क्यों?

मिट्ट की उर्वरता बनाए रखने के लिए आवश्यक बातें:-

* सभी प्रकार के जैविक पदार्थों का संग्रहण, संरक्षण कर प्रभाकारी ढंग से प्रयोग में लाना।

* फसल चक्र में दलहनी फसलों का समावेश करके वायुमण्डलीय नाइट्रोजन स्थिरीकरण को बढ़ावा देना एवं गहरी जड़ वाली फसलें उगाना।

* रासायनिक उर्वरकों के साथ फसल अवशेषों का प्रयोग करना।

* जैव उर्वरकों का प्रयोग।

* अच्छे प्रबंधन द्वारा उपयोग किए जाने वाले उर्वरकों की उपयोग क्षमता में वृद्धि करना।

भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का महत्वपूर्ण योगदान है। कृषि में उत्पादन बढ़ोत्तरी के साथ-साथ यदि समुचित अनाज एवं बीज भंडारण पर ध्यान दिया जाए तो हम अपने लक्ष्य तक पहुंच पाने में सफल हो सकते हैं। भारत के कई राज्यों में गेहूं उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए यह आवश्यक है कि गेहूं के भंडारण से जुड़ी समस्याओं एवं समाधान को भली-भांति समझा जाए ताकि हम देश में नये सिरे से गेहूं उत्पादन से जुड़ी समस्याओं को सुलझा पाने में सक्षम एवं खाद्य सुरक्षा के मामले में आत्मनिर्भर हो सकें।

कटाई उपरांत गेहूं का भंडारण - समस्या एवं समाधान

भंडारण के दौरान बीजों में कई प्रकार के भौतिक परिवर्तन आते है, जैसे कि रंग, आकार, संरचना, यांत्रिक सामर्थ्य, बीज नमी व शुष्कता जिसका प्रभाव गुणवत्ता एवं बाजार मूल्य पर भी पड़ता है। इसके अलावा कुछ प्रमुख कारकों का प्रभाव भी पड़ता है, उदाहरण के लिए बीज में नमी की मात्रा, भंडार का तापमान इत्यादि। यदि नमीयुक्त बीज को तीन माह तक इस अवस्था में संचय किया जाए तो लगभग 30 प्रतिशत पौष्टिक तत्व घट जाते हैं, जिसके कारण सूक्ष्मजीवों को सक्रियता बढ़ जाती है एवं जीव में अनेक रासायनिक परिवर्तन होते हैं। केवल अच्छा गुणवत्तायुक्त बीज ही अच्छी भूमि में उत्पादन दे पाता है। यही कारण है कि गेहूं के बीज का भंडारण सावधानी से किया जाना चाहिए। फसल कटाई के समय बीज की नमी भंडारण के लिए सुरक्षित सीमा से अधिक रहती है, जबकि भंडारण करते समय इन्हें 8-10 प्रतिशत तक सुखाना आवश्यक हो जाता है। 13 प्रतिशत से अधिक नमी में बीजों की श्वसन क्रिया बढ़ने के साथ उनमें कीट व कवक का प्रकोप बढ़ जाता है।

तापमान

यदि बीजों को अधिक तापमान पर सुखाया जाए, तो उनकी क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, इसके लिए बीजों को 30-40° से तक के तापमान से अधिक पर सुखाना अच्छा होता है।

यह बात हमेशा ध्यान रखनी चाहिए कि बीजों को 28° से. या कम तापमान पर ही रखना चाहिए, क्योंकि सूक्ष्म जीवाणुओं के आक्रमण से भंडारित बीज का तापमान बढ़ जाता है। यदि बीज सही तापमान में रखा जाए तो उनका ओज व अंकुरण क्षमता अधिक समय तक बनी रहती है।

संग्रहित अनाज के प्रमुख हानिकारक कीट

सामान्यत: ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले कुछ किसान अपनी घरेलू आवश्यकताओं के लिए गेहूं का भंडारण परंपरागत भंडारण पात्रों में ही करते है। जिससे अनाज की हानि अधिक होती है। एक सर्वेक्षण के मुताबिक करीब 5 प्रतिशत अनाज की हानि चूहों एवं कीड़ों के कारण होती है। अत: यह आवश्यक हो जाता है

कि भंडारण में लगने वाले चूहों, कीटों एवं अन्य हानिकारक कीटों की रोकथाम के लिए उचित व्यवस्था एवं बचाव की जानकारी भली-भांति हो।

* **लाल सुरी:-** गेहूं से बनने वाले अन्य महत्वपूर्ण उत्पाद जैसे कि मैदा, सूजी, आटा आदि में लाल सुरी नामक कीट अधिक नुकसान पहुंचाता है। यह लाल एवं भूरे रंग का होता, जिसके जीवन काल में 4 अवस्थाएं होती हैं, जिनमें सूंडी तथा प्रौढ़ दोनों की अवस्थाएं हानिकारक हैं। यह सामान्य रूप से कटे हुए दानों या अन्य कीटों द्वारा ग्रसित दानों को ही हानि पहुंचाता है।

* **पतंगा:-** यह कीट धान्य फसलों को अत्यधिक नुकसान पहुंचाता है, यह उड़ने वाला कीट है। यह अनाज की ऊपरी सतह तक सीमित रहता है। इस कीट के जीवन में चार अवस्थाएं होती है, जिनमें सूंडी अवस्था में नुकसान अधिक पहुंचाता है।

* **लाल सुरही:-** यह भंडारित गेहूं में लगने वाला दूसरा प्रमुख हानिकारक कीट है। यह गेहूं, चावल, मक्का एवं आटा आदि को काफी नुकसान पहुंचाता है। यह बादामी काले रंग का बेलनाकार कीट है। वयस्क अवस्था में इसका सिर आंतों की ओर झुका होता है, इसी अवस्था में यह अनाज को अधिक नुकसान पहुंचाता है। इसके जीवन चक्र की अवधि 60-80 दिनों की होती है, जिनमें 4 अवस्थाएं होती हैं। एक मादा अपने पूरे जीवन काल में करीब 300-500 तक अंडे देती है।

* **खपरा बीटल:-** यह धान्य एवं दलहनी फसलों का हानिकारक कीट है, जो देश के प्राय: सभी स्थानों में पाया जाता है, यह भूरे रंग का अंडाकार कीट है, जिसके विकास में ऑक्सीजन की आवश्यकता अधिक होती है, यही कारण है कि यह कीट भंडारण में अनाज की ज्यादा गहराई तक नहीं जा पाता और केवल ऊपर से ही दानों के भ्रूण वाले भाग को खाता है। इस कीट से ग्रसित गेहूं के दाने कटे हुए दिखाई देते हैं।

* **अनाज का घुन:-** यह गेहूं में लगने वाला सामान्य रूप से खतरनाक कीट है। यह अधिकांशत: सभी अनाजों को नुकसान पहुंचाता है, विशेषकर चावल में घुन मुख्यत: भूरे या काले रंग का बेलनाकार कीट होता है। जिनमें प्रजनन वर्षा ऋतु के समय होता है। आर्द्रता अधिक होने पर इनकी संख्या तेजी से बढ़ती है। यह सभी मौसमों में सक्रिय होता है, परन्तु वर्षा ऋतु सबसे अनुकूल होती है, इस मौसम में एक जोड़ी नर-मादा मिलकर 10 लाख अंडे देते हैं। इन अंडों से निकलने वाली ग्रब सूंडी दाने के अंदर प्रवेश कर समस्त दानों को खोखला बना देती है।

* **संग्रहित अनाज के प्रमुख सूक्ष्म जीवाणु:-** अनाजों के भंडारण के दौरान कीटों के अलावा कुछ सूक्ष्य जीवाणु भी बीच को नुकसान पहुंचाते है, जिनमें फफूंद, बैक्टीरिया, यीस्ट प्रमुख हैं। अधिक अनाज के दानों में नमी की मात्रा अधिक हो तो फफूंद का विकास जल्दी होता है। इसके अलावा अधिक तापमान यदि हो तो जीवाणुओं की वृद्धि दर कम हो जाती है। इन सूक्ष्म जीवाणुओं के प्रकोप से बीज की अंकुरण क्षमता पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है। दानों का रंग बदल जाता है और उनसे दुर्गन्ध आने लगती है, क्योंकि कुछ फफूंद हानिकारक टॉक्सिन्स उत्पन्न करती है।

* **सूक्ष्म जीवाणुओं एवं कीटों का रासायनिक नियंत्रण:-** सूक्ष्म जीवाणुओं से बचाव के लिए कुछ प्रमुख विधियां है, जैसे कि भंडारित होने वाले बीजों को अच्छी तरह धूप में सुखाकर ही भंडारित करें। कवक से बचाव के लिए 2.5 ग्राम थाइरम प्रति कि.ग्रा. बीज का प्रयोग करना उचित होता है।

* जीवाणुओं की वृद्धि 40° से. से अधिक तापमान पर कम हो जाती है और 60° से. तक का तापमान जीवाणुओं के जीवित रहने की पूरी संभावना मिटा देता है।

* कीड़ों का प्रकोप होने पर गोदामों में मोलाथियान और 50 प्रतिशत ई.सी. डेल्टामेन्थ्रिन का पानी के साथ 1 और 100 के अनुपात में घोल बनाकर छिड़काव करें।

* भंडारित बीजों में कीटों के नियंत्रण हेतु एल्युमिनियम फॉस्फाइड की गोलियां प्रयोग में लाई जा सकती है, क्योंकि इन गोलियों से फॉस्फीन नामक जहरीली गैस वातावरण की नमी के संपर्क में आने से बनती है, जिससे सारे कीट मरने लगते है।

* कीट ग्रसित अनाज को ई.डी.बी. से प्रधूमित करने से उनमें उपस्थित सभी कीट स्वत: मरने लगते है।

भंडारण में चूहों का नियंत्रण

एक अनुमान के मुताबिक ऐसा पाया गया है कि चूहों से प्रतिवर्ष लगभग 25 प्रतिशत भंडारित बीज नष्ट हो जाते हैं। भंडार गृह में भंडारित बीज में कीटों एवं सूक्ष्मजीवों के अलावा सर्वाधिक हानि चूहों से होती है। ये बीज को कुतर-कुतर कर बर्बाद कर देते हैं, जिससे बीज न खाने योग्य रह जाता है, न बोने योग्य। अत: इनका नियंत्रण करना अति आवश्यक हो जाता है:

* चूहों से बचाव का सबसे आसान एवं प्रभावी तरीका है कि भंडारगृह का निर्माण चूहारोधी तरीके से किया जाना चाहिए, ताकि चूहों का प्रवेश आसानी से गोदामों में न हो सके।

* चूहों के बिलों में एल्युमिनियम फॉस्फाइड के पाउडर को आटे, मैदा या सूजी में मिलाकर रखें, इसे खाने से चूहे दूर जाकर तुरन्त मर जाते हैं।

* चूहों से बचाव के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में प्राय: चूहेदानी का भी का प्रयोग किया जाता रहा है, परन्तु इससे बहुत कम संख्या में चूहों पर नियंत्रण होता है, क्योंकि चूहेदानी में केवल एक समय में एक ही चूहा मुश्किल से पकड़ा जा सकता है।

* चूहों के नियंत्रण के लिए एंटी कोआंगुलैंट्स का भी प्रयोग किया जा सकता है, जिसे बाजारू भाषा में रेटाफिन या बारफेरिन के नाम से जाना जाता है।

इन सभी उपायों के बावजूद हम जैविक विधि का भी उपयोग सूक्ष्मजीवों एवं कीटों से बचाव के लिए कर सकते हैं, जैसे कि मिर्च का पाउडर, हींग का धुआं, नीम की पत्ती जो कि ग्रामीण क्षेत्रों में आसानी से और पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो जाती है।

पशुओं तथा मानव स्वास्थ्य पर ऑक्सीटोसीन के दुष्प्रभाव

ऑक्सीटोसीन एक हर्मोन है, जो पश्च पीयूष ग्रंथि से स्रावित होता है। यह गर्भाशय के संकुचन और दूध को बाहर स्रावण की कार्यवाही करता है। इस हार्मोन को पहली बार कृत्रिम रूप से 1953 में विन्सेन्ट डु विगन्यूड द्वारा सिन्थेसिस किया गया था। ऑक्सीटोसीन एक बहुत ही शक्तिशाली प्राकृतिक व कृत्रिम हार्मोन है।

अब तक ऑक्सीटोसीन को ऐसा रसायन माना जाता था, जो जानवरों में अपने बछड़ें के प्रति प्रेम का भाव पैदा करता है, जिससे ज्यादा दूध उतरता है, लेकिन अब शोधकर्ताओं ने एक नई बात पाई है कि जहां ये अपने समुदाय के भीतर एक दूसरे के प्रति प्रेम और विश्वास को बढ़ावा देता है, वहीं दूसरे समुदायों और जातियों के प्रति अविश्वास के भाव का निर्माण पैदा करता है।

ऑक्सीटोसीन का प्रयोग

दुधारू गाय भैंस के बछड़े किसी कारणवश यदि मर जायें या पशु का दूध दूहते समय अधिक परेशान करता हो अथवा पशुपालक बछड़ों को पालना न चाहता हो, पशुओं को डराने-धमकाने के कारण दूध देना बन्द कर दिया हो या पशु कम दूध देता हो तो ऐसे समय में अधिकांश पशुपालक दुधारू पशुओं से पूरा दूध प्राप्त करने के उद्देश्य से ऑक्सीटोसीन हार्मोन का प्रयोग करते हैं।

इस प्रकार की समस्या अधिकतर देशी गायों और भैंसों में होती है। विदेशी या संकर नस्ल की गायों में कम पायी जाती है। पशुपालक अपने हित को देखते हुए अपने पशुओं में ऑक्सीटोसीन का प्रयोग तो कर लेते हैं, परन्तु वे इसके प्रयोग से होने वाले बुरे प्रभाव से अनभिज्ञ रहते है या फिर वे इसके हानिकारक प्रभावों को नजरअंदाज कर देते हैं। ऑक्सीटोसीन हार्मोन जो सूई द्वारा पशु के मांस में दूध दूहने के 5-7 मिनट पहले ही दिया जाता है, पशुपालक दिन में दो बार उपयोग में लाता है। यह सस्ता है और 50 पैसे प्रति इंजेक्शन आसानी से उपलब्ध है, सस्ता होने की वजह से प्रत्येक पशुपालक इसके प्रयोग से होने वाले हानिकारक प्रभावों के बारे में बिना सोचे-समझे प्रयोग करने लगता है। आज पशुपालक इतना लालची होता जा रहा है, पशु के बीमार होने या तनाव में रहने पर भी दूध देने के लिए मजबूर कर देता है। ऑक्सीटोसीन हार्मोन का प्रयोग प्रायः स्त्रियों में कठिन प्रसव के समय दिया जाता है, परन्तु इस हार्मोन की उपलब्धता बड़ी आसानी से हो जाने के कारण निरन्तर रूप से पशुओं में इसका दुरूपयोग होने लगा है।

ऑक्सीटोसीन हर्मोन सुई द्वारा पशु के मांस में दूध दूहने के 5–7 मिनट पहले ही दिया जाता है। सस्ता होने की वजह से प्रत्येक पशुपालक इसके प्रयोग से होने वाले हानिकारक प्रभावों के बारे में बिना सोचे समझे प्रयोग करने लगता है। स्वार्थवश हम पशु के बीमार होने या तनाव में रहने पर भी दूध देने के लिए मजबूर कर देते हैं। ऑक्सीटोसिन हर्मोन के क्या-क्या दुष्प्रभाव हैं और यह मानव तथा पशु स्वास्थ्य को किस तरह प्रभावित करता है।

पशु और उनके बछड़ों पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव

* पशु के शरीर में प्राकृतिक रूप से ऑक्सीटोसीन हार्मोन का बनना बन्द हो जाता है।

* पशु की सामान्य शारीरक क्रियाओं पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

* पशु ठीक समय पर गर्मी (ताव) में नहीं आता अथवा गर्भधान नहीं कर पाता या गर्भधारण हो जाये तो बच्चे के विकास पर अनुकूल प्रभाव नहीं होता।

* गर्भपात की दर बढ़ जाती है। गाय-भैंस जब ब्याती है तो इनके बछड़ों के मरने की संभावना ज्यादा रहती है।

* पशु के जनन अंगों पर प्रतिकूल प्रभाव के कारण प्रजनन प्रणाली को नष्ट कर देता है और बांझपन आ जाती है और आगे दूध उत्पादन के लिए बेकार हो जाता है।

* अगले ब्यांत में भी पशु स्वतः ही दूध नहीं देता तथा इस हार्मोन की आदत हो जाने के कारण बिना ऑक्सीटोसीन हार्मोन की सुई लगवाये दूध नहीं देता।

* अगले ब्यांत में दूध उत्पादन और वसा प्रतिशत बहुत कम हो जाता है और पशु के अयन में सूजन आ जाती है।

* बछड़ों में समय पर परिपक्वता नहीं आती है, मां से ज्यादा समस्या बछड़ों में आ जाती है।

* पूरे भारत में इस ऑक्सीटोसीन का प्रयोग करने से बीफ (गाय-भैंस का मांस) भी अत्यन्त विषाक्त हो गया है।

मानव जाति पर पड़ने वाले दुष्प्रभावः-

* गाय-भैंस से ऑक्सीटोसीन हार्मोन का बड़ा हिस्सा दूध में आ जाता है, जब मनुष्य हार्मोन मिले हुए दूध का उपयोग करता है तो उसके लिए बहुत ही हानिकारक है।

* बच्चों पर इसका असर ज्यादा पड़ता है। उनके सुनने में गडबड़ी और आंखों से कम दिखाई देता है। मस्तिष्क रोग और मानसिक विकृतियां हो जाती है। आम लक्षण उनके थकान और ऊर्जा की कमी हो जाती है।

* ऑक्सीटोसीन हार्मोन विशेष रूप से महिलाओं में उनके शरीर विकास को बाधित करता है, जिसकी वजह से नाबालिक लड़किया जल्दी परिपक्व हो जाती है।

* पुरूषों में उत्तेजना कम हो जाने से नपुसंकता आ जाती है।

यह हेरोइन की तुलना में एक अधिक खतरनाक दवा है। यह मानव जीवन को नष्ट कर देता है और भारत में बड़े पैमाने पर प्रयोग में लिया जा रहा है। आप में से हर एक में दूध के माध्यम से शरीर में ऑक्सीटोसीन जो आ गया है।

बचावः

1. ऑक्सीटोसीन हार्मोन के बचाव के लिए, पशुओं को इसके प्रयोग का आदी नहीं बनने देना चाहिए। जहां तक संभव हो सके, बिना ऑक्सीटोसीन हार्मोन लगाये ही दूध दूहने का प्रयत्न करना चाहिए।

2. यदि पशु का बछड़ा मर गया है तो पशु को बांट खिलाकर दूध निकालने की आदत डालनी चाहिए। ऐसा करने से पशु धीरे-धीरे दूध देना प्रारम्भ कर देता है।

3. बछड़े के मरने को रोकने के पूरे प्रयत्न किये जाने चाहिए जैसे जन्म के बाद खीस पिलाना, कृमिनाशक दवा पिलाना और टीकाकरण करवाणा आदि।

4. पशु के बछड़े को जन्म से ही मां से अलग करके पालना चाहिए। ऐसा करने से पशु अपने बछड़े को बिना दूध पिलाये ही दूध देती रहेगी।

भारत सरकार ने ऑक्सीटोसीन के नकारात्मक प्रभाव को स्वीकार किया है। इसको अनुचित पदार्थ के रूप में घोषित किया है। यह खाद्य एवं औषधि के तहत अवैध है। ऑक्सीटोसीन एक एच दवा है, इसका मतलब है कि इसे डॉक्टर की पर्ची के बिना खरीद नहीं सकते। यह विशेष रूप से पशु अधिनियम, 1960 की धारा 12 और खाद्य और औषधि अपमिश्रण निवारण अधिनियम पशु क्रुरता की रोकथाम के तहत प्रतिबंधित है। इसलिए कानून पहले मौजूद है, अब आवश्यकता है तो इसके प्रभावी बनाने की।

ऑक्सीटोसीन निर्माता कम्पनियां भी पशुओं में लगाने का जोरदार विरोध करती है। इस हार्मोन को आपात स्थिति में ही लगाया जाना चाहिए। यह केवल डिलीवरी के समय केवल महिलाओं में, वो भी केवल योग्य स्त्री रोग विशेषज्ञ द्वारा लगाया जाना चाहिए। यदि दवा प्रयोग करते समय किसी भी तरह की त्रुटि रहती है तो गर्भाशय में अत्यधिक संकुचन आ सकता है और ऑक्सीटोसीन बच्चे के मस्तिष्क को ऑक्सीजन की आपूर्ति कम कर देता है। अतः ऑक्सीटोसीन हार्मोन का प्रयोग पशुओं और मानव जाति के लिए अहितकर है।

लक्ष्मीनारायण वर्मा, विषय वस्तु विशेषज्ञ (पशुपालन), कृषि विज्ञान केन्द्र, चौमूं टाकरडा, जयपुर (उत्तर प्रदेश)

शेष पृष्ठ 5 की

धान की नर्सरी में रोग एवं पोषक तत्व प्रबंधन

रोकथाम :

* बीज उपचार करें।

* बीमारी के लक्षण दिखाई देते ही 120 ग्राम ट्राइसाइक्लाज़ोल (बीम या सिविक) या 200 ग्राम कार्बेन्डाज़िम या 200 मिलीलीटर हिनोसाब को 200 लीटर पानी में मिला कर प्रति एकड़ छिड़काव करें।

3. खैरा रोग या जस्ते की कमी (ज़िंक डैफिशिऐंसी) : रोग के लक्षण पौधशाला व खेत में रोपाई के 2-3 सप्ताह बाद दिखाई देते हैं। इस रोग के कारण पत्तियों पर कत्थई (जंग) रंग के धब्बे बनते हैं। अधिक नमी की अवस्था में पौधे बौने रह जाते हैं, फुटाव रुक जाता है व पूरी की पूरी पत्ती भूरे लाल रंग की होकर सूख जाती है। रोगी पौधों की बढ़वार रुक जाती है। यह रोग मुख्यतया क्षारीय मिट्टी व ज़िंक की कमी वाले खेतों में अधिक होता है।

रोकथाम : * खेत में 10 किलोग्राम ज़िंक प्रति एकड़ की दर से डालें।

* रोग के लक्षण दिखाई देने पर 1 किलोग्राम ज़िंक व 5 किलोग्राम यूरिया को 200 लीटर पानी में मिला कर प्रति एकड़ छिड़काव करें। 7-10 दिन बाद दोबारा छिड़कें।

4. पीलिया (लोहे की कमी) : यह रोग लोहे की कमी से होता है तथा पौधशाला व रोपाई की गई फसल दोनों में दिखाई देता है। इसके प्रकोप से पत्ते पीले व कमज़ोर हो जाते हैं। सबसे ऊपर वाली पत्ती सफेद हो जाती है। पौधों में फुटाव व बढ़वार रुक जाती है। पौधों की जड़ें पतली, छोटी व भूरे रंग की हो जाती हैं।

रोकथाम : खेत में 0.5 प्रतिशत फैरस सल्फेट व 2.5 प्रतिशत यूरिया का छिड़काव करें। यानि 1 किलोग्राम फैरस सल्फेट (हरा कशीश) व 5 किलोग्राम यूरिया को 200 लीटर पानी में मिला कर प्रति एकड़ छिड़कें।

5. सूत्रकृमि रोग : धान की नर्सरी व खेत दोनों में सूत्रकृमि का प्रकोप भी हो जाता है। सूत्रकृमि ग्रसित पौधों की जड़ें भूरी से लाल रंग की हो जाती हैं तथा उनकी बढ़वार रुक जाती है। पौधे पीले हो जाते हैं, फुटाव कम होता है और जड़ों व तनों की बढ़वार में भी कमी आ जाती है।

रोकथाम : रोकथाम के लिए पौधशाला के प्रति वर्ग मीटर क्षेत्र में 3-4 ग्राम कार्बोफ्यूरॉन का प्रयोग करें।

कुछ सुझाव : * प्रति हील 2-3 पौधे लगाएं।

* छोटी-छोटी जुटियां बनाएं और जड़ों से गारे को सावधानी से उतारें, ताकि जड़ों को कम नुकसान हो।

* खेत में सुहागा लगाने के दो-तीन घंटे बाद रोपाई करें ताकि गारा बैठ जाए और सही गहराई पर रोपाई हो सके। अधिक गहराई पर कम फुटाव होता है।

* कार्बेन्डाज़िम के घोल में पौध की रूट डीपिंग करें।

दुधारू पशुओं के प्रमुख रोग व उनका उपचार

रेबीज दो रूपों में देखी जाती है। पहले में रोगग्रस्त पशु काफी भयानक हो जाता है तथा दूसरे में वह बिल्कुल शांत रहता है। पहले अथवा उग्र रूप में पशु में रोग के सभी लक्षण स्पष्ट दिखाई देते हैं, लेकिन शांत रूप में रोग के लक्षण बहुत कम अथवा लगभग नहीं के बराबर ही होते हैं। गाय व भैसों में इस बीमारी के भयानक रूप के लक्षण दिखते हैं। पशु काफी उत्तेजित अवस्था में दिखता है तथा वह बहुत तेजी से भागने की कोशिश करता है। वह जोर–जोर से रम्भाने लगता है। अन्य बीमारियों के लिए पढ़िए आगे–

दुधारू पशुओं में बीमारियों के विभिन्न कारण है। सूक्ष्म विषाणु जीवाणु फफूंदी, अंतः व बाह्य परजीवी, प्रोटोजोआ, कुपोषण तथा शरीर के अंदर की चयापचय (मेटाबोलिज्म) क्रिया में विकार आदि प्रमुख कारणों में हैं। इन बीमारियों में बहुत-सी जानलेवा बीमारियां है तथा कई बीमारियां पशु के उत्पादन पर कुप्रभाव डालती हैं। कुछ बीमारियां एक पशु से दुसरे पशु को लग जाती है, जैसे मुंह व खुर की बीमारी गलघोंटू आदि इन्हें छतदार रोग कहते हैं। कुछ बीमारियां पशुओं से मनुष्यों में भी आ जाती है, जैसे रेबीज (हल्क जाना), क्षय रोग आदि, इन्हें जुनोटिक रोग कहते हैं। अतः पशुपालक को प्रमुख बीमारियों के बारे में जानकारी रखना आवश्यक है ताकि वह उचित समय पर उचित कदम उठा

कर अपनी आर्थिक हानि से बचाव तथा मानव स्वास्थ्य की रक्षा में भी सहयोग कर सके। दुधारू पशुओं के प्रमुख रोग निम्नलिखित है-

क. विषाणु जनित रोगः

1. मुंह व खुर की बीमारी :– सूक्ष्म विषाणु (वायरस) से पैदा होने वाली बीमारी को विभिन्न स्थानों पर विभिन्न स्थानीय नामों से जाना जाता है। जैसे कि खरेडू मुंहपका खुरपका, चपका, खुरपका आदि। यह बहुत तेजी से फैलने वाला रोग है, जोकि गाय, भैंस, भेड, बकरी, ऊंट, सूअर आदि पशुओं में होता है। विदेशी व संकर नस्ल रोग की गायों में यह बीमारी अधिक गम्भीर रूप से पायी जाती है। यह बीमारी हमारे देश में हर स्थान में होती है। इस रोग से ग्रस्त पशु ठीक होकर अत्यन्त कमजोर हो जाते हैं। दुधारू पशुओं में दूध का उत्पादन बहुत कम हो जाता है तथा बैल काफी समय तक कार्य करने योग्य नहीं रहते। शरीर पर बालों का कवर खुरदरा तथा खुर कुरूप हो जाते हैं।

रोग का कारणः– मुंहपका-खुरपका रोग एक अत्यन्त सूक्ष्म विषाणु जिसके अनेक प्रकार तथ उप-प्रकार है, से होता है। इनकी प्रमुख किस्में में ओ,ए,सी, एशिया-1, एशिया-2, एशिया-3, सैट-1, सैट-3 तथा इनकी 14 उप किस्में शामिल है। हमारे देश में यह रोग मुख्यतः ओ,ए,सी, तथा एशिया-1 प्रकार के विषाणुओं द्वारा होता है। नम-वातावरण, पशु की आन्तरिक कमजोरी, पशुओं तथा लोगों का एक स्थान से दूसरे स्थान पर आवागमन तथा नजदीकी क्षेत्र में रोग का प्रकोप इस बीमारी को फैलाने में सहायक कारक है।

संक्रमण विधिः– यह रोग बीमार पशु के सीधे सम्र्पक में आने, पानी, घास, दाना, बर्तन, दूध निकलने वाले व्यक्ति के हाथों से, हवा से तथा लोगों के आवागमन से फैलता है। रोग के विषाणु बीमार पशु की लार, मुंह, खुर व थनों में पड़े फफोलों में बहुत अधिक संख्या में पाये जाते हैं। ये खुले में घास, चारा तथा फर्श पर चार महीनों तक जीवित रह सकते हैं, लेकिन गर्मी के मौसम में यह बहुत जल्दी नष्ट हो जाते हैं। विषाणु जीभ, मुंह, आंत, खुरों के बीच की जगह, थनों तथा घाव आदि के द्वारा स्वस्थ पशु के रक्त में पहुंचते है तथा लगभग 5 दिनों के अंदर उसमें बीमारी के लक्षण पैदा करते हैं।

रोग के लक्षणः– रोगग्रस्त पशु को 104-106 डिग्री फारेनहाइट तक बुखार हो जाता है। वह खाना-पीना व जुगाली करना बन्द कर देता है। दूध का उत्पादन गिर जाता है। मुंह से लार बहने लगती है तथा मुंह हिलाने पर चप-चप की आवाज आती है। इसी कारण इसे चपका

रोग भी कहते हैं। तेज बुखार के बाद पशु के मुंह के अंदर, गालों, जीभ, होंठ, तालू व मसूडों के अंदर खुरों के बीच तथा कभी-कभी थनों व अयन पर छाले पड़ जाते है। ये छाले फटने के बाद घाव का रूप लेते हैं, जिससे पशु को बहुत दर्द होने लगता है। मुंह में घाव व दर्द के कारण पशु खाना-पीना बन्द कर देते हैं, जिससे वह बहुत कमजोर हो जाते हैं। खुरों में दर्द के कारण पशु लंगड़ा चलने लगता है। गर्भवती मादा में कई बार गर्भपात भी हो जाता है। नवजात बच्छे/बच्छियां बिना किसी लक्षण दिखाए मर जाते हैं। लापरवाही होने पर पशु के खुरों में कीडे पड़ जाते हैं तथा कई बार खुरों के कवच भी निकल जाते हैं, हालांकि वयस्क पशु में मृत्यु दर कम (लगभग 10 प्रतिशत) हैं, लेकिन इस रोग के पशुपालक को बहुत ज्यादा आर्थिक हानि उठानी पड़ती है। दूध देने वाले पशुओं में दूध उत्पादन में कमी आ जाती है। ठीक हुए पशुओं का शरीर खुरदरा तथा उनमें कभी हांफना रोग हो जाता है। बैलों में भारी काम करने की क्षमता खत्म हो जाती है।

उपचारः– इस रोग का कोई निश्चित उपचार नहीं है, लेकिन बीमारी की गम्भीरता को कम करने के लिए लक्षणों के आधार पर पशु का उपचार किया जाता है। रोगी पशु में द्वितीयक संक्रमण को रोकने के लिए उसे पशु चिकित्सक की सलाह पर एंटीबायोटिक के टीके लगाए जाते हैं। मुंह व खुरों के घावों को फिटकरी या पोटाश के पानी से धोते हैं। मुंह में बोरो-गिलिसरीन तथा खुरों में किसी एंटीसेप्टिक लोशन या क्रीम का प्रयोग किया जाता है।

रोग से बचावः–

1. इस बीमारी से बचाव के लिए पशुओं को पोलीवेलेंट वेक्सीन के वर्ष में दो बार टीके अवश्य लगवाने चाहिए। बच्छे/बच्छियां में पहला टीका 1 माह की आयु में, दूसरा तीसरे माह की आयु तथा तीसरा 6 माह की उम्र में और उसके बाद नियमित सारिणी के अनुसार टीके लगाए जाने चाहिए।

2. बीमारी हो जाने पर रोग ग्रस्त पशु को स्वस्थ पशुओं से अलग कर देना चाहिए।

3. बीमार पशुओं की देखभाल करने वाले व्यक्ति को भी पशुओं के बाड़े से दूर रहना चाहिए।

4. बीमार पशुओं के आवागमन पर रोक लगा देना चाहिए।

5. रोग से प्रभावित क्षेत्र से पशु नहीं खरीदना चाहिए।

6. पशुशाला को साफ-सुथरा रखना चाहिए।

7. इस बीमारी से मरे पशु के शव को खुला न छोड़कर गाड़ देना चाहिए।

2. पशु प्लेग (रिन्डरपेस्ट) :– यह रोग भी एक विषाणु से पैदा होने वाला छुतदार रोग है, जोकि जुगाली करने वाले लगभग सभी पशुओं को होता है। इनमें पशु को तीव्र दस्त अथवा पेचिस लग जाते है। यह रोग स्वस्थ पशु को रोगी पशु के सीधे संपर्क में आने से फैलता है। इसके अतिरिक्त बर्तनों तथा देखभाल करने वाले व्यक्ति द्वारा भी यह बीमारी फैल सकती है। इसमें पशु को तेज बुखार हो जाता है तथा पशु बेचैन हो जाता है। दुग्ध उत्पादन कम हो जाता है और पशु की आंखें सुर्ख लाल हो जाती है। 2-3 दिन बाद पशु के मुंह में होंठ, मसूड़े व जीभ के नीचे दाने निकल आते है, जो बाद में घाव का रूप लेते है। पशु के मुंह से लार निकलने लगती है तथा उसे पतले व बदबूदार दस्त लग जाते है, जिनमें खून भी आने लगता है। इसमें पशु बहुत कमजोर हो जाता है तथ उसमें पानी की कमी हो जाती है। इस बीमारी में पशु की 3-9 दिनों में मृत्यु हो जाती है। इस बीमारी क प्रकोप से विश्व भर में लाखों की संख्या में पशु मरते हैं, लेकिन अब विश्व सार इरेडीकेशन परियोजना के तहत लगातार शत-प्रतिशत रोग निरोधक टीकों के प्रयोग से अब यह बीमारी प्रदेश तथा देश में लगभग समाप्त हो चुकी हैं।

3. पशुओं में पागलपन या हलकजाने का रोग (रेबीज):– इस रोग को पैदा करने वाले सूक्ष्म विषाणु हलकाये कुत्ते, बिल्ली, बंदर, गीदड़, लोमड़ी या नेवले के काटने से स्वस्थ पशु के शरीर में प्रवेश करते हैं तथा नाड़ियों के द्वारा मस्तिष्क में पहुंच कर उसमें बीमारी के लक्षण पैदा करते हैं। रोग ग्रस्त पशु की लार में यह विषाणु बहुतायत में होता हैं तथा रोगी पशु द्वारा दूसरे पशु को काट लेने से अथवा शरीर में पहले से मौजूद किसी घाव के उपर रोगी की लार लग जाने से यह बीमारी फैल जाती है। यह बीमारी रोग ग्रस्त पशुओं से मनुष्यों में भी आ जाती है। अतः इस बीमारी का जन स्वास्थ्य की दृष्टि से बहुत महत्व है। एक बार पशु अथवा मनुष्य में इस बीमारी के लक्षण पैदा होने के बाद उसका फिर कोई इलाज नहीं है तथा उसकी मृत्यु निश्चित है। विषाणु के शरीर में घाव आदि के माध्यम से प्रवेश करने के बाद 10 दिन से 210 दिनों तक की अवधि में यह बीमारी हो सकती है। मस्तिष्क के जितना अधिक नजदीक घाव होता है। उतनी ही जल्दी बीमारी के लक्षण पशु में पैदा हो जाते है। जैसे कि सिर अथवा चेहरे पर काटे गए पशु में एक हफ्ते के बाद यह रोग पैदा हो सकता है।

लक्षण :– रेबीज मुख्यतः दो रूपों में देखी जाती है, पहला रोग ग्रस्त पशु काफी भयानक हो जाता है तथा दूसरा जिसमें वह बिल्कुल शांत रहता है। पहले अथवा उग्र रूप में पशु में रोग के सभी लक्षण स्पष्ट दिखाई देते है, लेकिन शांत रूप में रोग के लक्षण बहुत कम अथवा लगभग नहीं के बराबर ही होते हैं।

गाय व भैसों में इस बीमारी के भयानक रूप के लक्षण दिखते है। पशु काफी उत्तेजित अवस्था में दिखता है तथा वह बहुत तेजी से भागने की कोशिश करता है। वह जोर-जोर से रम्भाने लगता है तथा बीच-बीच में जम्भाइयां लेता हुआ दिखाई देता है। यह अपने सिर को किसी पेड़ अथवा दीवार के साथ टकराता है। कई पशुओं में मद के लक्षण भी दिखाई दे सकते हैं। रोग ग्रस्त पशु दुर्बल हो जाता है एवं और उसकी मृत्यु हो जाती है।

उपचार तथा रोकथामः– एक बार लक्षण पैदा हो जाने के बाद इस बीमारी का कोई इलाज नहीं है। जैसे ही किसी स्वस्थ पशु को इस बीमारी से ग्रस्त पशु काट लेता है। उसे तुरन्त नजदीकी पशु चिकित्सालय में ले जाकर

शेष पृष्ठ 10 पर

शेष पृष्ठ 9 की

दुधारू पशुओं के प्रमुख रोग व उनका उपचार

इस बीमारी से बचाव का टीका लगवाना चाहिए। इस कार्य में ढील बिल्कुल नहीं बरतनी चाहिए, क्योंकि ये टीके तब तक ही प्रभावकारी हो सकते है, जब तक कि पशु में रोग के लक्षण पैदा नहीं होते। पालतू कुत्तों को इस बीमारी से बचने के लिए नियमित

रूप से टीके लगवाने चाहिए तथा अवारा कुत्तों का समाप्त कर देने चाहिए। पालतू कुत्तों का पंजीकरण स्थानीय संस्थाओं द्वारा करवाना चाहिए तथा उनके नियमित टीकाकरण का दायित्व निष्ठापूर्वक मालिक को निभाना चाहिए।

ख. जीवाणु जनित रोग

1. गलघोंटू रोग *(हीमारेजिक सेप्टिकसिमिया)*:- गाय व भैंसों में होने वाला एक बहुत ही घातर तथा छुतदार रोग है, जो अधिकतर बरसात के मौसम में होता है, यह गोपशुओं की अपेक्षा भैंसों में अधिक पाया जाता है। यह रोग बहुत तेजी से फैलकर बड़ी संख्या में पशुओं को अपनी चपेट में लेकर उनकी मृत्यु का कारण बन जाता है, जिससे पशुपालकों को भारी नुकसान उठाना पड़ता है। इस रोग के प्रमुख लक्षणों में तेज बुखार, गले में सूजन, सांस लेने में तकलीफ निकालकर सांस लेना तथा सांस लेते समय तेज आवाज होना आदि शामिल है। कई बार बिना किसी स्पष्ट लक्षणों के ही पशु की अचानक मृत्यु हो जाती है।

उपचार तथा रोकथाम:- इस रोगग्रस्त हुए पशु को तुरन्त पशुचिकित्सक को दिखाना चाहिए अन्यथा पशु की मौत हो जाती है। सही समय पर उपचार दिए जाने पर रोगग्रस्त पशु को बचाया जा सकता है। इस रोग की रोकथाम के लिए रोगनिरोधक टीके लगाए जाते हैं। पहला टीका 3 माह की आयु में, दूसरा 9 माह की अवस्था में तथा इसके बाद हर साल यह टीका लगाया जाता है। ये टीके पशुचिकित्सा संस्थानों में निःशुल्क लगाए जाते हैं।

लंगडा बुखार (ब्लैक क्वार्टर):- जीवाणुओं से फैलने वाला यह रोग गाय व भैंसों दोनों में होता है, लेकिन गोपशुओं में यह बीमारी अधिक देखी जाती है तथा इससे अच्छे व स्वस्थ पशु ही ज्यादातर प्रभावित होते है। इस रोग में पिछली अथवा अगली टांगों के ऊपरी भाग में भारी सूजन आ जाती है, जिससे पशु लंगडा कर चलने लगता है या फिर बैठ जाता है। पशु को तेज बुखार हो जाता है, तथा सूजन वाले स्थान को दबाने पर कड़-कड़ की आवाज आती है।

उपचार तथा रोकथाम:- रोगग्रस्त पशु के उपचार हेतु तुरन्त नजदीकी पशुचिकित्सालय में संपर्क करना चाहिए, ताकि पशु को शीघ्र उचित उपचार मिल सके। देर करने से पशु को बचाना लगभग असंभव हो जाता है, क्योंकि जीवाणुओं द्वारा पैदा हुआ जहर (टोक्सीन) शरीर में पूरी तरह फैल जाता है, जोकि पशु की मृत्यु का कारण बन जाता है। उपचार के लिए पशु को ऊंची डोज में प्रोकेन पेनिसिलीन के टीके लगाए जाते है तथा सूजन वाले स्थान पर भी इस दवा को सुई द्वारा मांस में डाला जाता है। इस बीमारी से बचाव के लिए पशुचिकित्सक संस्थाओं में रोग निरोधक टीके निःशुल्क लगाए जाते है। अतः पशुपालकों को इस सुविधा का अवश्य लाभ उठाना चाहिए।

3. ब्रुसिल्लोसिस (पशुओं का छुतदार गर्भपात):- जीवाणु जनित इस रोग में गोपशुओं तथा भैंसों में गर्भवस्था के अन्तिम त्रैमास में गर्भपात हो जाता है। यह रोग पशुओं से मनुष्यों में भी आ सकता है। मनुष्यों में यह उतार-चढ़ाव वाला बुखार (अन्ड्युलैट फीवर) नामक बीमारी पैदा करता है। पशुओं में गर्भपात से पहले योनि से अपारदर्शी पदार्थ निकालता है तथा गर्भपात के बाद पशु की जेर रूक जाती है। इसके अतिरिक्त यह जोड़ों में अर्थराइटिस (जोड़ों की सूजन) पैदा कर सकता है।

उपचार व रोकथाम:- अब तक इस रोग का कोई प्रभावकारी इलाज नहीं है। यदि क्षेत्र में इस रोग के 5 प्रतिशत से अधिक पोजिटिव केस हो तो रोग की रोकथाम के लिए बच्छियों में 3-6 माह की आयु में बुसेल्ला-अबोर्टस स्ट्रेन-19 के टीके लगाए जा सकते हैं। पशुओं में प्रजनन की कृत्रिम गर्भाधान पद्धति अपना कर भी इस रोग से बचा जा सकता है।

ग. रक्त प्रोटोजोआ जनित रोग :

1. बबेसिओसिस अथवा टिक फीवर (पशुओं की पेशाब में खून आना):- यह बीमारी पशुओं में एक कोशिकीय जीव प्रोटोजोआ से होती है। बबेसिया प्रजाति के प्रोटोजोआ पशुओं के रक्त में चिचड़ियों के माध्यम से प्रवेश कर जाते है तथा वे रक्त की लाल रक्त कोशिकाओं में जाकर अपनी संख्या बढ़ाने लगते हैं, जिसके फलस्वरूप लाल रक्त कोशिकायें नष्ट होने लगती है। लाल रक्त कोशिकाओं में मौजूद हीमोग्लोबिन पेशाब के द्वारा शरीर से बाहर निकलने लगती है। जिससे पेशाब का रंग कॉफी के रंग का हो जाता है। कभी-कभी उसे खून वाले दस्त भी लग जाते है। इसमें पशु खून की कमी हो जाने से बहुत कमजोर हो जाता है। पशु में पीलिया के लक्षण भी दिखाई देने लगते हैं तथा समय पर इलाज न कराया जाये तो पशु की मृत्यु हो जाती है।

उपचार एवं रोकथाम:- यदि समय पर पशु का इलाज कराया जाये तो पशु को इस बीमारी से बचाया जा सकता है। इसमें बेरेनिल के टीके पशु के भार के अनुसार मांस में दिए जाते हैं तथा खून बढ़ाने वाली दवाओं का प्रयोग किया जाता है। इस बीमारी से पशुओं को बचाने के लिए उन्हें चिचड़ियां के प्रकोप से बचना जरूरी है, क्योंकि ये रोग चिचड़ियों के द्वारा ही पशुओं में फैलता है।

घ. बाह्य तथा अन्तः परजीवी जनित रोग

1. पशुओं के शरीर पर जुएं, चिचड़ी तथा पिस्सूओं का प्रकोप:- पशुओं के शरीर पर बाह्य परजीवी जैसे कि जुएं, पिस्सू या चिचड़ी आदि प्रकोप कर पशुओं का खून चूसते हैं, जिससे उनमें खून की कमी हो जाती है तथा वे कमजोर हो जाते हैं। इन पशुओं की दुग्ध उत्पादन क्षमता घट जाती है तथा वे अन्य बहुत-सी बीमारियों के शिकार हो जाते हैं। बहुत से परजीवी जैसे कि चिचड़ियां आदि पशुओं में कुछ अन्य बीमारी जैसे टीक-फीवर का संक्रमण भी देते हैं।

2. पशुओं में अतः परजीवी प्रकोप:- पशुओं की पाचन नली में भी अनेक प्रकार के परजीवी पाए जाते हैं, जिन्हें अंतः परजीवी कहते हैं। ये पशु के पेट, आंतों, यकृत उसके खून व खुराक पर निर्वाह करते हैं, जिससे पशु कमजोर हो जाता है तथा वह अन्य बहुत-सी बीमारियों का शिकार हो जाता है। इससे पशु की उत्पादन क्षमता में भी कमी आ जाती है।

ड. चयापचय (मेटाबॉलिज्म) जनित रोग

1. प्रसूतकी का बुखार:- यह रोग गाय-भैंस के ब्याने के बाद कैल्शियम, मैगनीशियम व फास्फोरस की कमी के कारण हो जाता है। अधिक दूध देने वाले पशु में उपरोक्त तत्वों की शरीर में कमी हो जाती है, जिससे यह रोग हो जाता है। यह रोग अधिकतर सर्दी में हो जाता है, क्योंकि चारे में कैल्शियम, मैग्नीशियम की कमी हो जाती है। इस रोग में पशु के शरीर का तापमान सामान्य से बहुत कम हो जाता है। यह तापमान 96 डिग्री से 98 डिग्री.फा. तक हो सकता है। पशु निढाल और सुस्त हो जाता है। पशु अधिक देर तक खड़ा नहीं रह सकता तथा बैठकर गर्दन अपनी कमर पर लगा देता है। पशु के मुंह से पानी चलने लगता है। पशु का गोबर रूक जाता है व पशु निभाई करने लगता है। कई बार पशु पेशाब करना भी बन्द कर देता है। पशु की टांगों में कम्पन भी हो जाती है और कई बार पशु बेहोश भी हो सकता है। अकसर यह रोग ब्याने के बाद 72 घण्टे के अन्दर-अन्दर हो जाता है, परन्तु कई बार यह रोग ब्याने के बाद दस दिन तक भी हो जाता है। पशुपालक का इस बात का भी

ज्ञान होना चाहिये कि यदि पशु बहुत अच्छा दूध देने वाला है और पशु की यदि खुराक दूध उत्पादन अनुसार नहीं मिल रही तो यह बीमारी ब्याने के बाद 2-3 मास तक भी हो सकती है। पशु खाना बन्द कर देता है व पशु की थुथड़ी सूख जाती है।

उपचार एवं रोकथाम:- इस रोग की चिकित्सा पशुचिकित्सक से ही शीघ्र अति शीघ्र करवानी चाहिये। इस रोग में कालबेरल (कैल्शियम बोरागलुकोनेट) या माईफैक्स एम.एवं बी. 450 मि.ली. नस में स्थिति अनुसार दिया जाता है। यदि सारी दवाई नस में चढ़ायी जाये तो पेशाब में कैल्शियम कई बार निकल आता है, इसलिए कुछ समय पश्चात् यह रोग पुनः हो सकता है। इसलिये आधी दवाई नस में व आधी दवाई खाल के नीचे एस/सी लगाई जाये तो यह अच्छी प्रभावित होती है। यदि उपरोक्त रोग का उपचार करने में अधिक देर तक बैठा रहा हो तो पशु को एविल 10 मि.ली. का टीका मांस में भी दिया जाना चाहिये। पशु को निशादर 50 ग्राम गुड़ में 2-3 दिन तक दें। यह कैल्शियम की शरीर से निकासी कम रहता है।

सावधानियां:- अधिक दूध देने वाले पशु को ब्याने से एक मास पहले मिनरल मिक्सचर आर्जिमिन (ग्लेक्सो) 75 ग्राम प्रतिदिन चारे में दिया जाये। पशु के ब्याने के 72 घण्टे बाद तक थन दूध/खीस के सारे खाली नहीं करने चाहिये। पशु को सम्पूर्ण पौष्टिक आहार कम से कम ब्याने से 15-20 दिन पहले शुरू कर देना उचित है। सर्दी के मौसम में चारे में कैल्शियम इत्यादि की मात्रा की बहुत कमी हो जाती है। इसलिये खुराक की तरफ विशेष ध्यान दिया जाये ताकि इस रोग से बचा जा सकें।

2. अफारा:- यह रोग अधिक बरसीम, बिना कटी बरसीम व फलीदार चारा खाने से हो जाता है। गली-सड़ी या वर्षा, ओस से भीगी घास खाने से। चना या दूसरा दाना अधिक खाने से। अचानक आहार बदलने से भी अफारा हो जाता है। गेहूं का आटा, दाना, चोकर, सूखी रोटी इत्यादि अधिक खाने से।

इस रोग के कारण पशु की बांई खोक फूल जाती है। पशु बैचेन व सांस खींच कर लेता है। पशु जुगाली करना बन्द कर देता है। पशु गोबर व पेशाब थोड़ा-थोड़ा व बार-बार करने की कोशिश करता है। यदि अफारा बढ़ जाये तो पशु के मुंह व नाक से चारे के कन बाहर निकलने लगते है।

उपचार:-

1. तारपीन का तेल 50 ग्राम, सरसों/अलसी का तेल 500 ग्राम से 750 ग्राम तक हींग 15 ग्राम एवं टिम्पोल 100 ग्राम नाल द्वारा।

2. यदि अफारे के साथ पेट में पानी इकठ्ठा हो जाये तो ब्लोटोसिल 100 मि.ली. नाल द्वारा।

3. पशु को यदि उपरोक्त ईलाज से आराम नहीं आ रहा हो तो पशुचिकित्सक द्वारा बांई कोख में Trocar व केन्युला लगाकर पेट से गैस निकाल दी जाती है।

सावधानियां:-

1. यदि पशु को सांस लेने में कठिनाई हो रही हो तो मुंह में लकड़ी डालकर मुंह खुला रखना चाहिये।

2. पशु के पेट पर कुछ मालिश करनी चाहिये व पशु को जब अफारा हो जाये तो कुछ दूरी तक चलाना चाहिये।

3. पशु को बरसीम काटकर खिलानी चाहिये।

खुद के आस्तित्व के लिए जागने और जगाने का दिन है 'पृथ्वी दिवस'

सुरेश कुमार गोयल

विश्व में पृथ्वी को बेहतर बनाने, लोगों में जागरूकता लाने और पर्यावरण संरक्षण हेतु प्रोत्साहित करने के लिए हर वर्ष पृथ्वी दिवस मनाया जाता है। पृथ्वी दिवस को मनाने का मुख्य उद्देश्य लोगों को पूरी दुनिया में बढ़ रहे प्रदूषण को रोकने, प्राकृतिक संसाधनों को बचाने और पर्यावरण के संरक्षण हेतु जागरूक करना है।

आज अंधाधुंध विकास के नाम पर पृथ्वी और प्रकृति से छेड़छाड़ के कारण भूकम्प और सुनामी जैसी प्राकृतिक आपदाओं को झेलना पड़ रहा है। मौजूदा समय में ग्लेशियर

पिघल रहे है, ग्लोबल वार्मिंग के साथ-साथ प्रदूषण भी खूब बढ़ रहा है। इन सभी से पृथ्वी नष्ट हो रही है। ऐसी स्थिति में पृथ्वी की गुणवत्ता, उर्वरकता और महत्ता को बनाए रखने के लिए हमें पर्यावरण और पृथ्वी को सुरक्षित रखने की जरूरत है।

इस संसार में मां को भगवान से भी बढ़ कर स्थान दिया गया है, क्योंकि वह न सिर्फ हमें जन्म देती है, बल्कि हमें पाल-पोस कर जीने और इस दुनिया में रहने के लायक बनाती है। मां अगर पल भर के लिए भी हमसे दूर हो जाए, तो कितना बुरा लगता है न, और अगर भगवान न करे वह मां बीमार हो जाए, तो हम पर क्या बीतती है, यह हम ही जानते है। लेकिन मां के प्रति यही प्रेम, भक्ति और भावना उस वक्त कहां चली जाती है, जब हम प्रकृति पर अत्याचार करते है।

एक मां तो हमें जन्म देती है, परन्तु यह प्रकृति भी तो एक मां ही है, जो हमें न सिर्फ रहने के लिए स्थान देती है, बल्कि हमें भोजन भी देती है। इसी पृथ्वी से हमें जीने के लिए ऑक्सीजन मिलती है, पीने के लिए पानी मिलता है। यही पृथ्वी हमारे घूमने के लिए अपना आंचल खोल देती है, अपनी गोद में खिला कर बिल्कुल मां की तरह ही हमारा ध्यान रखती है।

लेकिन आज विश्व भर में हर जगह प्रकृति का दोहन जारी है। कहीं फैक्टरियों का गंदा जल पीने के पानी में मिलाया जा रहा है, तो कहीं गाड़ियों से निकलता धुआं हमारे जीवन में ज़हर घोल रहा है। यह सभी घुमा-फिरा कर हमारी पृथ्वी को दूषित बनाता है। जिस पृथ्वी को हम मां का दर्जा देते हैं, उसे हम खुद अपने ही हाथों दूषित करने और जहर घोलने में लगे हुए हैं।

'अर्थ डे' यानी 'पृथ्वी दिवस' एक तरह से पूरी दुनिया में एक साथ मनाया जाने वाला एक वार्षिक आयोजन है। जिसे पूरे विश्व में 192 देश एक साथ 22 अप्रैल के दिन मनाते है। 1969 में यूनेस्को द्वारा आयोजित एक प्रेस कान्फ्रेंस में 21 मार्च, 1970 को इस दिन को प्रथम बार मनाने का निर्णय लिया गया था, परन्तु बाद में इसमें कुछ परिवर्तन किए गए और 22 अप्रैल के दिन इसे मनाने का निर्णय लिया गया।

यह दिन मुख्य रूप से पूरे विश्व के पर्यावरण सम्बन्धी मुद्दों और कार्यक्रमों पर निर्भर रहता है। इस दिन का मुख्य उद्देश्य शुद्ध हवा, पानी और पर्यावरण के लिए लोगों को प्रेरित करना और उस पर अमल करवाना है ताकि आने वाली पीढ़ियों को प्रदूषण के बुरे परिणामों का सामना न करना पड़े। एक अनुमान के अनुसार प्रति दिन 60 लाख टन कूड़ा समुद्र में डाला जाता है।

1970 से प्रारंभ हुए इस दिवस को आज पूरी दुनिया के करीब 1 अरब से अधिक लोग मनाते है। इस वर्ष 2025 में इसके 55 साल पूरे होने जा रहे है। प्रकृति पर बढ़ते अत्याचार और प्रदूषण की वजह से ग्लोबल वार्मिंग भी बढ़ी और विश्व स्तर पर लोगों को चिंता होनी शुरू हुई। आज ग्लोबल वार्मिंग, जलवायु परिवर्तन पृथ्वी के लिए सबसे बड़ा संकट बन गया है।

पर्यावरण के प्रति लोगों को संवेदनशील बनाने के उद्देश्य से 22 अप्रैल, 1970 को पहली बार पृथ्वी दिवस मनाया गया था। विश्व पृथ्वी दिवस की स्थापना अमरीकी सीनेटर जेराल्ड नेल्सन ने 1970 में की थी। सीनेटर नेल्सन ने पर्यावरण को एक राष्ट्रीय एजेंडा में जोड़ने के लिए पहले राष्ट्रव्यापी पर्यावरण बचाने की प्रस्तावना दी।

पृथ्वी दिवस का महत्व इसलिए महत्वपूर्ण है, क्योंकि इस दिन हमें ग्लोबल वार्मिंग के बारे में पर्यावरणविदों के माध्यम से पर्यावरण पर पड़ने वाले कुप्रभाव का पता चलता है। पृथ्वी दिवस जीवन संपदा को बचाने व पर्यावरण को ठीक रखने के बारे में जागरूक करता है। जनसंख्या वृद्धि से प्राकृतिक संसाधनों पर अनावश्यक बोझ डाला है, संसाधनों के सही इस्तेमाल के लिए पृथ्वी दिवस जैसे कार्यक्रमों का महत्व बढ़ गया है। 1970 से 1990 तक यह पूरे विश्व में फैल गया। 1990 से इसे अंतर्राष्ट्रीय दिवस के रूप में मनाया जाने लगा और 2009 में संयुक्त राष्ट्र ने भी 22 अप्रैल को विश्व पृथ्वी दिवस के रूप में मनाने की घोषणा कर दी।

2000 में, इंटरनैट ने पूरी दुनिया के कार्यकर्ताओं को जोड़ने में पृथ्वी दिवस की मदद की। 22 अप्रैल के आते ही, पूरी दुनिया के 5000 समूह एकजुट हो गए और 184 देशों के सैंकड़ों मिलियन लोगों ने इसमें हिस्सा लिया। इस दिन की जरूरत को 1970 में लगभग 20 मिलियन लोगों द्वारा महसूस किया गया था, जब उन्हें एहसास हुआ था कि 'पृथ्वी' की रक्षा करना अत्यंत आवश्यक है। हर साल इस दिन दुनिया भर से अरबों लोग विभिन्न गतिविधियों जैसे कि पेड़ लगाना, सफाई अभियान और अन्य मदर नेचर के माध्यम से भाग लेते हैं।

ऐसा कहा जाता है कि अमेरिका में इस दिन को ट्री डे के रूप में जाना जाता है। इसे फादर ऑफ अर्थ डे भी कहा जाता है। यह दुनिया में सबसे बड़ा जन जागरूकता आंदोलन है। फिलहाल सिर्फ इतना ही कि 22 अप्रैल 'पृथ्वी' मां के बहाने खुद के अस्तित्व के लिए जागने और जगाने का दिन है। आइए, स्वयं जगें और दूसरों को भी जगाएं।

सब्जियों की नर्सरी

खरीफ या वर्षाकालीन मौसम में सब्जियों की फसलें लेने हेतु सब्जियों की नर्सरी में ऊपर उथली क्यारियां बनाते हैं। सब्जी के पौधे योग्य आकार के ट्रे (2 मी.×1 मी.) या विभिन्न प्रकार के उथले गमलों में भी उगाए जा सकते है। जहां तक हो सके नर्सरी या पौध शाला पानी के स्त्रोत के पास हो। उस जगह से पानी के निकास हेतु उचित व्यवस्था की जानी चाहिए। नर्सरी की मिट्टी ऐसी होनी चाहिए, जो भुरभुरी हो, जिसमें पोषक तत्व पर्याप्त हों, पानी अच्छी तरह सोख सके एवं ऊपरी सतह सूख सके।

नर्सरी में क्यारियां बनाते समय ध्यान रखें कि क्यारियों की चौड़ाई एक मीटर हो, कदापि एक मीटर से ज्यादा न हो ताकि नर्सरी में निंदाई-गुड़ाई पौधों को बिना नुकसान पहुंचाए की जा सके। क्यारी की लंबाई खेत की समतलता के आधार पर सुविधानुसार रखी जा सकती है।

क्यारी बनाते समय मिट्टी अच्छी भुरभुरी कर दें। उथली क्यारी (रेज्ड बेड) बनाने के लिए भी सर्वप्रथम रेखांकन (ले आउट) इस तरह से कर दें, कि सिंचाई की मुख्य नाली के लंबवत एक मीटर चौड़ी क्यारियां बने एवं दो क्यारियों के बीच 40 सै.मी. की उपनाली रहे, लेकिन क्यारी बनाते समय दो क्यारियों के बीच की एवं हर क्यारी के चारों तरफ की क्यारी के ऊपर इस तरह से डाल दें कि हर क्यारी की ऊंचाई 15 सै. मी. रहे एवं दो क्यारियों के बीच नाली रहे, जिसका उपयोग मुख्यत: पानी के निकास हेतु किया जा सके। आवश्यकता पड़ने पर उन्हीं नालियों का उपयोग पानी देने के लिए भी करना चाहिए। क्यारी के चारों किनारे एवं कोने को फावड़े के उल्टी तरफ से अच्छी तरह से ठोंक दें ताकि वे मजबूत हो जाएं एवं वर्षा अथवा सिंचाई से क्यारी की मिट्टी बह न जाएं।

इस तरह से मौसमानुसार उथली क्यारियां बनाने के बाद उन पर अच्छी पकी हुई गोबर खाद पर्याप्त होती है। मिट्टी अगर कन्हार या डोरसा हो तो गोबर की खाद की मात्रा के बराबर रेज डालना आवश्यक होता है ताकि बोते समय बीज पर्याप्त दूरी पर बोया जा सके। सब्जियों में कुछ बीमारियां ऐसी है, जिनका निदान करना अत्यंत कठिन है, जैसे- बैंगन का बैक्टेरियल विल्ट (मुरझान), जिस क्षेत्र में ऐसी बीमारियों का प्रकोप देखा गया है, उन्हें सलाह दी जाती है, इस बीमारी के फैलाव को रोकने हेतु पौधशाला की क्यारियों का निर्जमीकरण (स्टरलाईजेशन) निम्नलिखित तरीके से करें।

नर्सरी निर्जमीकरण (स्टरलाईजेशन) :- सर्वप्रथम उपरोक्तानुसार क्यारियां तैयार करने के बाद 10 मि.ली. फार्मलीन एक लीटर पानी में मिलाकर घोल बना लें। इस घोल को नर्सरी की क्यारियों पर लगातार छिड़कते रहें ताकि क्यारियों की ऊपरी 15 सै.मी. तह की मिट्टी दवा के घोल के संतृप्त हो जाए। छिड़काव के तुरंत बाद क्यारियों को पॉलीथिन शीट या अनुपयोगी बोरों से ढक दें ताकि फार्मलीन (फ्यूम) व्यर्थ न जाकर मृदा में समा जाए। छिड़काव के सात दिन बाद ढके हुए बोरों या पालीथिन शीट हटा लें। क्यारियों को फावड़े से एक बार फिर गुड़ाई कर सातों दिनों तक खुला छोड़ दें। तदुपरांत क्यारियों को समतल करने के बाद ही बीजों की बुवाई करें।

नर्सरी में बीज बोने से पहले बीज का उपचार थायरम नामक फफूंदनाशक दवा से करें। बीजोपचार के लिए 2.5 ग्राम दवा प्रति किलो बीज के हिसाब से करना अतिआवश्यक है।

सामान्यत: किसान भाई बीज छिड़का पद्धति से बोते है, परंतु पौधशाला में बीज को हमेशा कतार में ही बोना चाहिए। क्यारी के चौड़ाई की तरफ से नोकदार छोटी लकड़ी की सहायता से कतारें इस तरह बनाए कि दो कतारों के बीच करीब 3-4 सै.मी. अंतर रहे ताकि पौधों को सूर्य प्रकाश पर्याप्त मिल सके एवं हवा का आवागमन अच्छी तरह से हो सके। कतार की गहराई बीज के आकार पर आधारित होना चाहिए। यह ध्यान रखें कि बीज इतनी गहराई पर पड़े ताकि उनके आकार से चार गुना मिट्टी ढकते समय रहे। अगर बीज छोटा है तो बीज में पर्याप्त मात्रा में रेत मिला दें ताकि बीज घना न हो जाए। बुवाई के बाद हाथ से या लकड़ी की छोटी पटिया से क्यारी को समतल करें ताकि बोया हुआ बीज अच्छी तरह से ढक जाए। इसके पश्चात क्यारी पर सूखी घास फैला दें ताकि क्यारी को सींचते समय बीज और मिट्टी बह न जाए। बोने के तुरंत हजारे से फब्बारे के रूप में सींच दें। सींचते समय फब्बारें से पहले क्यारी के बाहर ही पानी गिरा दें और फब्बारा शुरू होते ही धीरे से क्यारी पर बढ़े और अच्छी तरह सींच दें। वर्षा ऋतु में अक्सर सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती, फिर भी दो वर्षा से पौधों को बचाने हेतु क्यारी पर छोटा सा मचान बनाएं तथा मचान बनाने पर सिंचाई पर खास ध्यान दें। पौधों के जमाव होने पर हर हफ्ते 2.5 ग्राम डायथेन एम-45 प्रति लीटर पानी अथवा एक ग्राम बाविस्टीन प्रति लीटर पानी में मिलाकर फवारणी या ड्रेचिंग करें ताकि पौधों को आर्द्र गलन (डेम्पिंग ऑफ) नामक फफूंद से बचाया जा सके। 10 दिन के अंतर से एक मिली मैलाथियान प्रति लीटर पानी में मिला कर छिड़काव करें ताकि पौधों का कीट के प्रकोप से बचाव किया जा सके। अगर कुछ पौधे नीचे गिरते दिखाई दें या जमीन के सतह पर लगा पौधे का भाग सड़ा हुआ पाएं, तो यह जान लें कि आर्द्रगलन (डेम्पिंग ऑफ) बीमारी का प्रकोप शुरू हुआ है, तुरंत ऐसे पौधें को निकाल दें, पानी देना कम करें एवं ऐसी व्यवस्था करें कि पौधों को पर्याप्त सूर्य का प्रकाश एवं हवा मिले।

ज्यादातर सब्जियों के पौधे बुवाई के 25-30 दिन बाद लगाने लायक हो जाते है। सिर्फ प्याज के पौधे लगाने के लिए तैयार होने में 45 से 50 दिन का समय लगता है।

डा. डी.ए. सरनाईक

धान की दो नई किस्मों से बढ़ेगी पैदावार

★ कृषि मंत्री ने पहली जीनोम–संवर्धित चावल किस्मों का अनावरण किया ★ जीनोम एडिटिंग करने वाला पहला देश बना भारत ★ इससे उपज 30 प्रतिशत तक बढ़ेगी

कृषि मंत्री शिवराज सिंह चौहान ने रविवार को भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (आई.सी.ए.आर.) द्वारा विकसित पहली जीनोम संवर्धित चावल किस्मों 'डीआरआर धान-100 (कमला)' और 'पूसा डीएसटी चावल-1' का अनावरण किया।

इन किस्मों से जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों का समाधान करने के साथ-साथ चावल की पैदावार को 30 प्रतिशत तक बढ़ाया जा सकेगा। चौहान ने कहा, "यह हमारे लिए एक महत्वपूर्ण दिन है... जल्द ही, चावल की ये किस्में किसानों को उपलब्ध करवा दी जाएंगी।" उन्होंने कहा कि नई किस्मों से चावल की पैदावार 20-30 प्रतिशत बढ़ जाएगी, जल संरक्षण होगा और चावल की खेती से ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में कमी आएगी।

इन किस्मों को आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, कर्नाटक, तमिलनाडु, केरल, पुडुचेरी, बिहार, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, ओडिशा, झारखंड, बिहार और पश्चिम बंगाल सहित प्रमुख चावल उत्पादक राज्यों के लिए अनुशंसित किया गया है। वैज्ञानिकों ने इन दोनों किस्मों को दो व्यापक रूप से उगाए जाने वाले चावल प्रकार - सांबा महसूरी (बी.पी.टी.-5204) और एम.टी.यू.-1010 (कॉटनडोरा सन्नालू) को बेहतर तनाव सहिष्णुता, उपज और जलवायु अनुकूलनशीलता के साथ विकसित किया, जबकि उनकी मूल शक्तियों को बरकरार रखा। दोनों किस्में बेहतरीन सूखे की सहनीयता और उच्च नाइट्रोजन- उपयोग दक्षता प्रदर्शित करती हैं।

मंत्री ने कहा कि डी.आर.आर. धान-100 (कमला) अपनी मूल किस्म की तुलना में लगभग 20 दिन पहले (130 दिन) पक जाती है, जिससे जल्दी कटाई संभव हो जाती है और फसल-चक्र या कई फसल-चक्रों की संभावना होती है। डी.आर.आर. धान-100 (कमला) की कम अवधि किसानों को तीन सिंचाई बचाने की सुविधा देती है। उन्होंने कहा कि 50 लाख हैक्टेयर में दोनों किस्मों की खेती से 45 लाख टन अतिरिक्त धान का उत्पादन हो सकता है। मंत्री ने कहा, "भारत उन्नत प्रौद्योगिकियों की खोज करके कृषि क्षेत्र को विकसित किए बिना विकसित राष्ट्र का लक्ष्य हासिल नहीं कर सकता।" उन्होंने आई.सी.ए.आर. के वैज्ञानिकों से देश की आयात निर्भरता को कम करने के लिए दलहन और तिलहन की बेहतर किस्में विकसित करने का आह्वान किया। ये जीनोम-संवर्धित चावल की किस्में भारत की कृषि जैव प्रौद्योगिकी में एक बड़ी प्रगति का प्रमाण हैं, जो जलवायु परिवर्तन और खाद्य सुरक्षा की दोहरी चुनौतियों के लिए व्यावहारिक पेश करती हैं।

किसान भाईयो!

गेहूं के अवशेष (नाड़) को

न जलाएं

क्योंकि

- लगभग 5 करोड़ जीव प्राणी प्रभावित होते हैं।
- तापमान में औसतन 2-5 डिग्री की बढ़ोत्तरी हो जाती है, जिससे जीव-प्रणाी प्रभावित होते हैं।
- पशुओं के लिए पराली/तूड़ी में कमी आ जाती है।
- मिट्टी में मौजूद खुराकी तत्त्व नष्ट हो जाते हैं।
- मिट्टी की उर्वरा-शक्ति खत्म हो जाती है।
- 18 लाख टन कार्बन डाइऑक्साइड गैसें हवा में बिखर जाती हैं, जो श्वांस की बीमारियों को जन्म देती हैं।

यदि आप फिर भी गेहूं के अवशेष को जलाते हो तो आप सिर्फ मतलब-प्रस्त हैं !!

खेती दुनिया द्वारा जनहित में जारी

पंजाब के 5 ज़िलों में खेतों में पेड़ लगाने के लिए मिलते हैं रुपए

2 ज़िलों के 1822 किसानों के लिए 4.45 करोड़ की ग्रांट जारी, खाते में 1.77 करोड़ जल्द आएंगे

'कार्बन सोखो पैसा कमाओ योजना' के तहत अपने खेतों में सफेदे व पोपलर के पेड़ लगाने वाले दो ज़िलों होशियारपुर व पठानकोट के 1822 प्रगतिशील किसानों के लिए 4 करोड़ 45 लाख 79 हज़ार रुपए की ग्रांट जारी की गई है। पहले चरण में बहुत जल्द 1 करोड़ 77 लाख 40 हज़ार रुपए इन किसानों के खातों में आएंगे। कार्बन क्रेडिट योजना के अधीन कंडी एरिया में पड़ते पांच ज़िलों पठानकोट, होशियारपुर, नवांशहर, रोपड़ व मोहाली के 3686 किसानों के खातों के लिए कुल मिलाकर 45 करोड़ रुपए अलॉट किए गए थे। इस धनराशि को चार चरणों में किसानों के खातों में भेजा जाएगा। इस योजना में होशियारपुर फॉरेस्ट डिवीज़न के अंतर्गत 920 किसानों के खातों में 895 लाख, दसुहा डिवीज़न के 515 किसानों के खातों में 507 लाख और पठानकोट डिवीज़न के 387 किसानों के खातों में 372 लाख सहित कुल 1822 किसानों के खातों में 1774 लाख रुपए आएंगे।

प्रति टन CO_2 सोखने पर मिलते हैं 8 यू.एस. डॉलर

कार्बन क्रेडिट योजना के अधीन किसान के खेत में लगे पेड़-पौधों ने कितनी कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2) सोखी है, उसके एवज में प्रति टन 8 यू.एस. डॉलर (669.92 रुपए) के हिसाब से भुगतान किया जाता है। किसानों को अपनी जमीनों पर पेड़ लगाने के लिए पैसे, देखभाल के लिए पैसे, 5 साल बाद बड़े होने पर पैसे, काटने पर बिक्री के लिए बाज़ार

उपलब्ध करवाना सभी जिम्मेदारी जंगलात महकमे की है।

तेज़ी से बढ़ने वाले पौधे लगाएं किसान : डॉ. संजीव

वन विभाग नार्थ सर्कल के कंजर्वेटर डॉ. संजीव कुमार तिवाड़ी ने बताया कि खेतों में लगे किसानों के पेड़ों में प्रति टन कार्बन की कितनी मात्रा है, उसके हिसाब से अमेरिकन एजेंसी वी.आर.सी. व टैरी के सहयोग से पैसे दिए जाते हैं। कार्बन क्रेडिट पाने के लिए किसानों को तेज गति से बढ़ने वाले पौधे पोपलर, सफेदा आदि लगाने चाहिए।